सीमित वितरण हेतु प्रकाशित

देखी सुनी

वर्ष 2013, अंक 27

"घर से विश्व शांति तक: आओ सैनिकीकरण को चुनौती दें और महिला हिंसा को मिटायें – जेंडर आधारित हिंसा के विरुद्ध १६ दिवसीय अभियान २०१३" अंतर्राष्ट्रीय विषय

प्रिय साथियों!

स्त्री विरोधी हिंसा कि जड़ों को तलाशता हमारा यह अंक संकलन हैं– कुछ ज़रुरी सामाजिक मुद्दो को जो आपके काम और समझ को और पुख़्ता करने में सहयोगी सामाग्री साबित होगा। जिसमें शामिल हैं– नाबालिग से जुड़ी बहस, स्वास्थय व अंधविश्वास से जुड़ी महिला हिंसा, विवाह व अधिकार, तेज़ाबी हमलो का चक्र, घरेलु कामगारों के हक़ तथा कुछ योजनाओं का विवरण।

अपने अनुभव, प्रतिक्रियायें व सुझाव अवश्य साँझा करें।

नीतू रौतेला
जागोरी सर्न्दभ समूह

स्त्री विरोधी हिंसा की जड़ें

विकास नारायण राय

भारतीय समाज में व्याप्त स्त्री विरोधी हिंसा की भयावहता को उस रोजमर्रा की अपमानजनक और संवेदनहीन भाषा में देखा जा सकता है जो स्त्री-पुरुष की गैरबराबरी को निरंतर व्यक्त करती रहती है। यह भाषा केवल शब्दों, संकेतों और हाव-भाव में ही व्यक्त हो, ऐसा भी नहीं है। आए दिन इस भाषा के भौतिक और मनोवैज्ञानिक हिंसक रूप सामने आते रहते हैं। सभ्यता के पैमाने हमें यौनिक शालीनता की भाषा तो सिखाते हैं, पर लैंगिक बराबरी की नहीं।

देश के प्रगतिशील शिक्षा संस्थानों में अग्रणी दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय का वातावरण आजकल ऐसे ही हिंसक भाषा-प्रयोग से कम्पायमान है। लैंगिक गैरबराबरी को साक्षात करते हुए, वहां के भाषा संकाय में चल रही कक्षा में एक छात्र ने सहपाठी छात्रा पर कुल्हाड़ी और छुरे से घातक हमला किया। हमलावर ने तुरंत स्वयं जहर खाकर अपनी जान दे दी। परिवार और परिवेश ने उसे ऐंठन से भरी पुरुष-अस्मिता और मानसिकता दी, उसी ने उससे ऐसी निरंकुश भाषा भी बोलवाई। पांच दिन बाद उसी संकाय की एक अन्य छात्रा पर उसका मित्र इसलिए टूट पड़ा कि वह मना करने के बावजूद दूसरे पुरुषों से बात करती है।

जेएनयू जैसे सहनशील वातावरण में ये घटनाएं दुर्भाग्यपूर्ण ही कही जाएंगी। पर इसे महज सुरक्षा में चूक या विश्वविद्यालय के सांस्कृतिक परिवेश में गिरावट जैसे मानदंडों पर कसना भी गलत होगा। सही जांच के लिए लैंगिक असमानता के आयामों को ध्यान में रखना होगा, जो अंततः एक निहायत गैरबराबरी की लैंगिक-भाषा को समाज में न केवल उपजाते हैं बल्कि तरह-तरह से उसके विस्फोटों को भी सामने लाते रहते हैं।

भारतीय संविधान में दो दर्जन से अधिक स्वीकृत भाषाएं और भारतीय समाज में सैकड़ों की संख्या में फल-फूल रही बोलियां होने के बावजूद स्त्री-पुरुष के बीच एक बराबरी की भाषा नहीं बन सकी है। यह स्वाभाविक भी है। जब स्त्री-पुरुष के बीच बराबरी ही नहीं है तो बराबरी की भाषा कहां से बने? इस भाषाई हिंसा का भौतिक स्वरूप प्रायः महिलाओं पर होने वाले तेजाबी हमलों के रूप में प्रकट होता रहता है। 'मर्द' यह ताब नहीं ले पाता कि स्त्री उसकी 'प्रेम हरकतों' को ठुकरा दे या उसके 'प्रेम प्रदर्शन' के प्रति उदासीनता दिखाए। मर्द की समझ में यह भी शामिल होता है कि प्रेम जताने का हक केवल पुरुष का है, स्त्री का नहीं। स्त्री तो केवल प्रेम किए जाने के लिए बनी है, न कि प्रेम जताने या प्रेम में अपनी मर्जी चलाने के लिए। परिवारों में लड़के यही देखते हुए बड़े होते हैं। समाजों और समुदायों में इसी 'मर्दानगी' को मजबूत किया जाता है। लिहाजा, मर्द अगर ठान ले तो काबू में न आने वाली स्त्री पर तेजाब या कुल्हाड़ी से आक्रमण करना उसके लिए स्वाभाविक प्रतिक्रिया हो जाता है।

इस गैरबराबरी की घिनौनी हिंसक परिणतियां समाज में चलती आ रही ऐसी तमाम अभिव्यक्तियों का भी परिणाम हैं, जो प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न विधियों से एक असमान दुनिया के सहज-प्रसार में बनी रहती हैं। बोल-चाल के लोकप्रिय माध्यमों का बड़ा हाथ होता है भाषा को लोगों की जबान पर बैठाने में। इस लिहाज से मीडिया की भूमिका भी लैंगिक बराबरी को लेकर सजग नहीं है। यहां तक कि सिनेमा, टीवी, समाचारपत्र जैसे लोकप्रिय माध्यम बार-बार गच्चा खाते देखे जा सकते हैं। कभी अनजाने में और यहां तक कि जान-बूझ कर भी।

तेजाब फेंकने वाले 'सूअर' को मीडिया में 'जिल्टेड लवर' के संबोधन से मानो उत्सर्ग का प्रतिरूप बना दिया जाता है। एक लड़की जो स्वेच्छा से प्रेमी के साथ अन्यत्र जाकर नया जीवन शुरू करती है उसे 'उठाई गई' या 'भगाई गई' कहा जाता है, मानो वह कोई वस्तु हो। खाप मनोवृत्ति से, विद्रोही लड़की की हत्या को बजाय वहशियाना कुकृत्य कहने के 'ऑनर किलिंग' जैसा अलंकृत संबोधन मिलता है। फिल्मी गानों और संवादों में यह प्रतिध्वनि आम चली आती है; 'तुम अगर मुझको न चाहो तो कोई बात नहीं, किसी गैर को चाहोगी तो मुश्किल होगी'। लोग तालियां बजाते रहते हैं। यह मीठी धमकी 'मर्द' के डीएनए का अंतरंग हिस्सा बना दी जाती है।

हिंदी साहित्य में विशेषकर हास्य कवियों की लेखनी से निकलने वाला रस, अधिकांशतः स्त्री के उपहास से भरा होता है। इंटरनेट या मोबाइल पर चल रहे तमाम चुटकुलों में भी स्त्री की कीमत पर हंसने का भाव हावी होता है। निजी बातचीत में अगर कोई गंभीर व्यक्ति भी वातावरण को हल्का-फुल्का करना चाहता है, तो प्रायः स्त्री का उपहास करने वाले प्रसंगों को ही माध्यम बनाता है। गालियों का सारा भंडार तो स्त्री जाति को संबोधित है ही।

ऐसा भी नहीं है कि लैंगिक दकियानूसी की यह परंपरा केवल अनपढ़ों, असभ्यों, परंपरावादियों, रूढ़िवादियों, प्रतिगामियों, धर्मांधों जैसों तक सीमित हो। अच्छे-अच्छों की भी सार्वजनिक रूप से जबान फिसलते देर नहीं लगती। 'टंच माल' (दिग्गी राजा), 'रोड रोलर' (जयराम रमेश), 'सबसे सुंदर अटार्नी जनरल' (बराक ओबामा) ऐसे हालिया प्रमुख उदाहरण हैं। यानी प्रगतिशीलों और मुक्त नैतिकता के पैरोकारों के भीतर भी कहीं-न-कहीं आसाराम, मोहन भागवत, रामदेव, जैसों के अंश ही कार्यरत रहते हैं।

लैंगिक भाषा की सबसे प्रचलित बदमाशी उन प्रसंगों में मुखरित होती है जिनमें पीड़ित को ही दोषी के कठघरे में खड़ा कर दिया जाता है। लड़की के साथ छेड़छाड़ हुई- उसने कपड़े ही ऐसे पहन रखे थे! बस में या पार्क में बलात्कार हुआ- गैरवक्त पुरुष मित्र के साथ 'उत्तेजक' हरकतें करेगी तो और क्या होगा! शादी का वादा कर-के यौन-संबंध बनाने की धोखाधड़ी हुई- अपनी मर्जी का करेगी तो भरेगी भी! संपत्ति में हिस्सा मांगने पर सारे कुनबे ने उससे किनारा कर लिया- पारंपरिक भावनात्मकता पर चोट करेगी तो परिवार क्यों अपनाएगा! जैसे एक जेबकतरे को सरे-बाजार कोई भी पीट सकता है, एक सेक्स-वर्कर पर कोई भी अपने को जबर्दस्ती थोप सकता है! परिवार के भीतर पत्नी पर कभी-कभार हाथ उठा देना कोई खास बात नहीं, पति नहीं हाथ उठाएगा तो कौन उठाएगा!

मर्द की समझ में यह भी शामिल होता है कि प्रेम जताने का हक केवल पुरुष का है, स्त्री का नहीं। स्त्री तो केवल प्रेम किए जाने के लिए बनी है, न कि प्रेम जताने या प्रेम में अपनी मर्जी चलाने के लिए। परिवारों में लड़के यही देखते हुए बड़े होते हैं। समाजों और समुदायों में इसी 'मर्दानगी' को मजबूत किया जाता है।

यह निरंतर अनुकूलन स्वयं स्त्री पर भी भारी पड़ता है। गैरबराबरी की भाषा का समीकरण उसके सिर पर भी सवारी करता ही है। सास-बहू के तमाम प्रसंग इसी अनुकूलन की उपज हैं। इसी अनुकूलन के चलते परिवारों में औरतें मर्दवादी सत्ता की एजेंट बना दी जाती हैं। यही अनुकूलन लड़की को चुप रह कर वह सब कुछ काफी दूर तक सहने को मजबूर करता है जो यौनिक हिंसा के रूप में उसके साथ घटता रहता है। इस चुप्पी के लिए भी परिवारों में इस्तेमाल होने वाली लैंगिक भाषा ही उसे तैयार करती है। कदम-कदम पर उसे याद कराया जाता है कि परिवार की 'इज्जत' उसके कंधों पर (यानी यौन शुचिता में) है। अगर किसी ने जबरन भी यह शुचिता छीन ली तो जवाबदेही उसी की बनेगी।

मशहूर टेनिस खिलाड़ी सरीना विलियम्स को किसी भी तरह से नासमझ या कमजोर नहीं कहा जाएगा। इस वर्ष के विम्बलडन ग्रैंड स्लैम से ऐन पहले उन्होंने भी एक सोलह वर्षीय अमेरिकी लड़की को लैंगिक कठघरे में खड़ा कर दिया। यह अश्वेत लड़की अपने दो मित्रों के साथ 'डेट' पर गई थी और उसे उन दोनों ने नशीला पेय पिला कर हवस का शिकार बना लिया। सरीना की टिप्पणी थी: जब तुम सोलह वर्ष की हो तो मित्रों के साथ गैरवक्त जाने का अंजाम जानना जरूरी है। तुम्हारे मां-बाप ने क्या यही शिक्षा दी है। वह लड़की अपने दोस्तों के साथ सिर्फ अच्छा समय बिताने गई थी; न कि बलात्कार करवाने, पर सरीना ने उसे ही दोषी के कठघरे में खड़ा कर दिया।

हमारे लैंगिक कानूनों की भाषा में तो कमाल का छल भरा होता है। ऊपरी तौर पर लगता है जैसे वे कानूनी प्रावधान स्त्रियों के सशक्तीकरण का राग अलाप रहे हैं। पर वास्तव में उस कानूनी भाषा में ऐसी पेचीदगियां होती हैं कि पीड़ित महिला को अपने दम वक्त पर राहत मिल ही नहीं सकती। मसलन, घरेलू हिंसा विरोधी कानून के अंतर्गत पीड़ित स्त्री को उस आवास से नहीं निकाला जा सकता जहां उसके साथ हिंसा हो रही है। कानूनी भाषा की बदमाशी यह है कि पीड़ित के साथ-साथ दोषियों को भी उसी आवास में रहने दिया जाता है। दूसरे शब्दों में पीड़ित को रहना तो उनके रहमो-करम पर ही है।

सभी जानते हैं कि 'कार्यस्थल पर यौन हिंसा' करने वाला स्त्री की लैंगिक दयनीयता का ही फायदा उठाता है। अगर कानून को लैंगिक बराबरी की भाषा बोलनी आती तो कानून बनता 'कार्यस्थल पर लैंगिक हिंसा' रोकने का। पर कानून को भी फिक्र है बस यौनिक शालीनता की।

रोजाना बेटियां 'स्वेच्छा' से पैतृक संपत्ति में अपना हक छोड़ती रहती हैं, और कानून के पास ऐसी भाषा नहीं है कि वह इसे रोक सके। मैं अपनी तमाम स्त्री संवेदी कार्यशालाओं में महिलाओं से, जिनमें प्रथम श्रेणी की अधिकारी भी शामिल हैं, कभी सही उत्तर नहीं पाता कि वे पैतृक संपत्ति में हक क्यों नहीं मांगती। प्रायः जवाब आता है, 'हमें जरूरत नहीं है'; या 'हमारे भाई बहुत अच्छे हैं'। काफी कुरेदने पर सही जवाब भी आता है, 'अगर हक मांगा तो भाई से नाता ही टूट जाएगा।'

क्या पुलिस, क्या अभियोजन, क्या न्यायालय, अपराध-न्याय व्यवस्था की किसी भी एजेंसी में कार्यरतों के पास लैंगिक बराबरी की भाषा नहीं होती है। न ही उनके प्रशिक्षण में उन्हें लैंगिक बराबरी की भाषा सिखाई जाती है और न उनके काम-काज में इस पर जोर है। वे रोजाना के निजी और सामाजिक जीवन में लैंगिक गैरबराबरी की भाषा बोलने के आदी होते हैं। लिहाजा उनके पेशेवर जीवन में भी ऐसी ही भाषा का परिलक्षित होना स्वाभाविक है।

सदियों में बनी लैंगिक भाषा को तोड़ना आसान नहीं है। मैंने सिर्फ एक बार अपने साथ यह प्रयोग किया और विफल रहा। सोचा कि जीवन में एक दिन, सारा दिन, पत्नी के साथ बराबरी की भाषा बोलूंगा। शाम तक जबड़े इस कदर दर्द करने लगे कि दोबारा इस प्रयोग की कभी हिम्मत नहीं पड़ी। एक ही कार्यस्थल पर काम करने वाले पति-पत्नी एक साथ घर लौटते हैं; पति आराम से सोफे पर पसर जाता है और बिना संकोच पत्नी से मुखातिब होता है: एक गिलास पानी पिलाना। ऐसे स्वर सैकड़ों नहीं हजारों तौर-तरीकों से रोजाना के पारिवारिक जीवन में गूंजते रहते हैं।

कह सकते हैं कि बराबरी की भाषा बराबरी के समाज में ही संभव है। पर परिवारों, स्कूलों, भाषा-संकायों, मीडिया, कानूनों में सायास लैंगिक बराबरी की भाषा पर काम करने से निश्चित ही लैंगिक बराबरी की दिशा में पहल होगी। ऐसे 'मर्द' तो सायास कम तैयार होंगे जो सरे-राह लड़की पर तेजाब फेंकते हों या सहपाठी पर कुल्हाड़ी चलाते हों। कम से कम झूठा दिलासा देने वाले छलभरे कानून तो हमें नहीं भरमाएंगे। हम उन तालिबान से भिन्न दिखेंगे जो लड़कियों को स्कूली शिक्षा के कुप्रभाव से 'बचाने' के नाम पर उन्हें गोली मार देते हैं।

'राम आ खाना खा, राधा आ झाड़ू लगा' जैसे स्वर परिवारों में कुछ तो कम होंगे। लड़कियों पर लदा 'इज्जत' का बोझ कुछ तो हल्का होगा। बजाय उन्हें महिला थाना, महिला बैंक/ डाकघर, महिला स्कूल, महिला अस्पताल आदि से संरक्षित करने के, समाज में उनसे बराबरी की भाषा बोलने वाले पुरुष मिलेंगे।

जनसत्ता 10.8.2013

बाल अधिकार व न्याय में संतुलन जरूरी

टोनी जोसेफ
बिजनेस वर्ल्ड के पूर्व संपादक और मीडिया सर्विस फर्म के चेयरमैन

यदि दुनिया भर में नाबालिगों से जुड़े आपराधिक कानूनों का जायजा लिया जाए तो पता चलेगा कि अन्य देशों ने हमसे बेहतर समाधान खोज निकाले हैं। इस मामले में सबसे दकियानूसी कानून हमारा है, क्योंकि इसमें उम्र ही एकमात्र मानदंड है कि किसे 'सजा' देनी है और किसे 'सुधारना' है।

नई दिल्ली में 23 वर्षीय छात्रा के साथ दुष्कर्म और नृशंस हत्या करने वाले पांच अपराधियों में से एक बाल सुधारगृह में दो साल से थोड़ा ज्यादा वक्त गुजार कर मुक्त हो जाएगा। इसके तीन कारण हैं। एक तो यह कि अपराध के समय उसकी आयु 18 साल से छह माह कम थी। इसलिए उस पर किशोर न्यायालय बोर्ड में ही मुकदमा चलाया जा सकता था। दूसरी बात यह कि कोई भारतीय किशोर न्यायालय बोर्ड तीन साल तक सुधार गृह में रखने की ही अधिकतम सजा सुना सकता था। और तीसरा यह कि यह नाबालिग अपराधी हिरासत में आठ माह पहले ही पूरे कर चुका है। निचोड़ यही है कि इस हत्यारे को मौजूदा भारतीय कानून के तहत वाकई अधिकतम सजा दी गई है।

पर क्या कानून के तहत न्याय हुआ है? ज्यादातर लोगों के लिए इस कानून के तहत हुआ गहरा अन्याय एक सदमे की तरह है। हालांकि नाबालिगों के अधिकारों से जुड़े कार्यकर्ता मानते हैं कि कानून के तहत न्याय हुआ है, क्योंकि 18 साल से कम आयु के अपराधियों के साथ वयस्कों से भिन्न व्यवहार जायज है। अब 18 साल से कम आयु के नाबालिग अपराधियों को 'दंडित' करने की बजाय 'सुधारना' क्यों चाहिए इसके पीछे उनकी दलील के तीन हिस्से हैं। एक तो यही कि 18 साल से कम आयु के किशोर, मस्तिष्क में विकासात्मक अंतर के कारण वयस्कों से अलग होते हैं। इसी कारण अपनी हरकतों के लिए वे उतने जिम्मेदार नहीं होते। दूसरा तर्क यह है कि कम आयु होने के कारण उनमें बदलने की संभावना अधिक होती है और इसलिए उचित उपचार किया जाए तो अपराधी भी कानून का पालन करने वाले उत्पादक नागरिक में बदल सकते हैं। तीसरा तर्क यह है कि इन बालकों को जेल में कट्टर अपराधियों के साथ रखा गया तो उनका हमेशा के लिए अपराधी बनना तय है।

यहां तक कि हाल में दिए गए फैसले से उद्वेलित लोगों को भी यह तो मानना पड़ेगा कि इन दलीलों में कुछ सच्चाई तो है, क्योंकि पांच साल के नाबालिग में उतनी सामाजिक जागरूकता या जिम्मेदारी की भावना नहीं होती, जितनी दस साल के नाबालिग में होती है। इसी तरह दस साल के नाबालिग और 15 साल के नाबालिग में भी यही फर्क होगा। अब सवाल यह उठता है कि बाल अधिकार कार्यकर्ताओं की चिंताओं को ध्यान में रखते हुए न्याय कैसे सुनिश्चित किया जाए?

अब तक ज्यादातर बहस इसी बात पर केंद्रित रही है कि नाबालिग अपराधी के लिए आयु सीमा घटाकर 15 या 16 वर्ष कर दी जाए। पर यह कोई समाधान नहीं है। इसका अर्थ तो समस्या को तब तक के लिए टाल देना होगा जब तक कि 15 साल का कोई नाबालिग भयानक अपराध नहीं कर देता। इसके बाद बाल अपराधी की आयु सीमा और घटाने की मांग शुरू हो जाएगी। तो क्या कोई दूसरा रास्ता भी है? यदि दुनिया भर में नाबालिगों से जुड़े आपराधिक कानूनों का जायजा लें तो पता चलेगा कि अन्य देशों ने हमसे कहीं बेहतर समाधान खोज निकाले हैं। तथ्य तो यह है कि नाबालिग अपराधियों के लिए हमारा कानून सबसे निष्प्रभावी और दकियानूसी है, क्योंकि उम्र यह तय करने का एकमात्र मानदंड है कि किसे 'सजा' देनी है और किसे 'सुधारना' है।

बाकी दुनिया यह सुनिश्चित करने के लिए कि न्याय देते समय बाल अधिकारों का भी ख्याल रखा जा सके, तीन तरीके इस्तेमाल करती है। पहला तरीका सामान्य अपराध और जघन्य अपराध में

फर्क करने का है। कई देशों में नाबालिग अपराधी पर सामान्य अदालत में ही मुकदमा चलाया जाता है यदि वह जघन्य अपराधी है। ऐसा करने के कारण भी हैं। नाबालिगों के अधिकारों की वकालत करने वाले कहते हैं कि 18 वर्ष से कम आयु के नाबालिग अपनी हरकतों के नतीजों से पूरी तरह वाकिफ नहीं होते और इसलिए वे अपनी करनी के लिए कम जिम्मेदार होते हैं। बाल अधिकारवादियों की यह दलील तब जायज होती है जब कोई नाबालिग मादक पदार्थों का सेवन करता पाया जाए या अंधाधुंध वाहन चलाता पकड़ा जाए। पर बात जब व्यक्तिगत फायदे या मौज-मस्ती के लिए हत्या और दुष्कर्म जैसी पूर्व नियोजित, हिंसक और विकृत अपराध की हो तो यह दलील मूर्खतापूर्ण और अधकचरी जानकारी पर आधारित लगती है। 17 वर्षीय नाबालिग की तो बात ही क्या 5 साल का बच्चा भी जानता है कि किसी निरपराध को शारीरिक पीड़ा पहुंचाना या उसके साथ खून-खराबा करना कितना घिनौना और भयानक गुनाह है।

दूसरा तरीका है आयु-सीढ़ी का उपयोग। यानी आयु कम होने के साथ सजा के प्रावधान भी क्रमशः लचीले होते चले जाते हैं। पर आयु की ऐसी कोई एक सीमा नहीं होती कि जो अचानक अपराधी को 'सुधार' के प्रावधानों से निकालकर 'सजा' के दायरे में ले जाए। नाबालिगों के लिए बनाए गए भारतीय कानून में भी ऐसी आयु-सीढ़ी है। सात साल से कम आयु के नाबालिग किसी भी स्थिति में अपराधी नहीं ठहराए जा सकते। सात और 12 वर्ष की आयु के बीच के नाबालिग भी अपराध के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराए जा सकते, बशर्ते उनमें उतनी परिपक्वता विकसित नहीं हो गई हो। पर परिणाम की दृष्टि से देखें तो यह निष्प्रभावी ही है, क्योंकि 18 साल से कम आयु के अपराधियों के लिए गंभीर अपराधों में भी अधिकतम सजा बहुत कम है।

तीसरा तरीका है जुवेनाइल कोर्ट को अपराध की प्रकृति और उसके नतीजे को ध्यान में रखकर मामले को सामान्य अदालत को सौंपने का विवेकाधिकार देना। मसलन, इंग्लैंड में आपराधिक जिम्मेदारी की उम्र 10 साल से शुरू होती है और जुवेनाइल कोर्ट 18 साल तक की उम्र के नाबालिग अपराधियों के मामले लेती है। लेकिन हत्या जैसे जघन्य अपराध के मामले में नाबालिग अपराधियों पर वयस्कों की तरह सामान्य अदालत में मुकदमा चलाया जाता है। कनाडा में भी 14 से 17 साल की उम्र के नाबालिग अपराधियों पर कुछ परिस्थितियों में वयस्कों की तरह मुकदमा चलाया जाता है। अमेरिका के अधिकतर राज्यों में बाल न्यायालय कुछ मानदंडों के आधार पर मामले सामान्य अदालत में हस्तांतरित कर सकते हैं। इस व्यवस्था को ज्युडिशियल वेवर कहते हैं। ऐसे ढेरों उदाहरण दिए जा सकते हैं जब तक कि इस तथ्य में कोई संदेह नहीं रह जाए कि नाबालिग अपराधों के लिए हमारे कानूनों में सुधार की सख्त जरूरत है। और सवाल सिर्फ आयु सीमा घटाने भर का नहीं है।

दैनिक भास्कर 02.09.2013

जुवेनाइल जस्टिस सिस्टम

मत और वास्तविकता

■ आमोद कंठ
पूर्व आईपीएस व महासचिव, प्रयास

देश में बाल अपराध या किशोर अपराध न्याय व्यवस्था का मूल एक विभेदी कानूनी प्रक्रिया में खोजा जा सकता है, जो रिफार्मेटरी स्कूल एक्ट, 1876 द्वारा नियमित होती थी और जिसके अंतर्गत पथभ्रष्ट युवा या बालक को सुधारा जाता था या उससे अपने आचरण की सफाई मांगी जाती थी। भारत की अधिकांश आधुनिक न्याय प्रणालियों, जो एंग्लो-सेक्सन या पश्चिमी विधिक परंपराओं से उपजी हैं, की तरह किशोर न्याय व्यवस्था भी उधार ली गई है। असल में, अंग्रेजी भाषा का शब्द 'जुवेनाइल' जिसका अर्थ है कि एक बाल (अपराधी); इस देश या भारतीय भाषाओं के लिए एक पराया शब्द है। हमारे यहां अब भी इस शब्द के समानार्थी शब्द हैं (जैसे हिन्दी में) किशोर या किशोरी बालक या बालिका। शायद यह भारतीय परंपरा के अनुकूल ही है कि भारत का एक अति प्रगतिशील कानून किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 बच्चों की दो श्रेणियों से सरोकार रखता है, अर्थात् वे बच्चे जिन्हें देखभाल और संरक्षण की जरूरत है और कानून से टकराने वाले किशोर।

आज पूरे देश में किशोर या बाल अपराधियों से जुड़े मुद्दों पर व्यापक भले ही भावनात्मक, बहस हो रही है और जनसाधारण की कल्पना में बाल अपराधी अचानक ही सबसे खतरनाक और संदिग्ध व्यक्ति बन गया है। आबादी का एक बहुत बड़ा भाग, यहां तक कि उच्च शिक्षित लोग भी किशोर अपराधियों, समाज के लिए एक खतरे के रूप में देखा जा रहा है, से निपटने के लिए बाल अपराधी न्याय व्यवस्था को दंड न्याय व्यवस्था के बराबर लाने का आग्रह कर रहे हैं। यह पूरी तरह से भुला दिया जा रहा है कि बालक और कानून के बीच कई तरह के संबंध हो सकते हैं। एक सभ्य समाज के लिए और भारतीय संविधान के प्रावधानों, बच्चों के साथ मित्रवत कानूनों, नीतियों और परंपराओं तथा बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र समझौते के प्रति हमारी अंतरराष्ट्रीय वचनबद्धता को भी देखते हुए कानून से पहली अपेक्षा बच्चे को दंड देना नहीं बल्कि उसे संरक्षण देना और उसका सुधार करना होना चाहिए।

असुरक्षित जीवन धकेलता है अपराध की तरफ

एक बच्चे का कानून से वास्ता या तो एक अपराध, दुराचार या शोषण के शिकार के रूप में पड़ता है या ऐसी परिस्थितियों में, जब वे एक दूसरे के विरोध में होते हैं। जुल्म के शिकार एक बच्चे के साथ एक विशिष्ट व्यवहार किया जाना अनिवार्य है, जैसा बाल अधिकारों के संरक्षण हेतु आयोग अधिनियम, 2009 जिसके अधीन बाल न्यायालय गठित होते हैं, में पहले ही प्रावधान किया गया है। बाल अपराधी न्याय व्यवस्था अधिनियम, 2000 के अधीन उन बच्चों, जिन्हें देखभाल और संरक्षण की जरूरत है, की सभी श्रेणियों की, मोटे तौर पर उनकी बुनियादी जरूरतें पूरी करके तथा उनके अस्तित्व, संरक्षण, विकास एवं सहभागिता के अधिकारों की रक्षा के जरिए देखभाल की जानी चाहिए। घर, परिवार और व्यवस्थित जीवन से वंचित ऐसे बच्चों, देश में जिनकी अनुमानित संख्या 3 से 3.5 करोड़ है, को गलियों और कार्यस्थलों पर देखा जा सकता है। कई कारणों से इनका जीवन असुरक्षित होता है-मानसिक या शारीरिक अक्षमता, दुराचार, नशीली दवाओं, अपराध और हिंसा के दलदल में धकेला जाना। यह सर्वथा उचित था कि भारतीय विधि-निर्माताओं ने उन जरूरतों को समझा और मुख्यतः बाल अपराध न्याय व्यवस्था में समुचित प्रावधान किए।

> यह जानना जरूरी है कि पूरी दुनिया के बच्चों की तुलना में भारतीय बच्चे सबसे कम आक्रामक और अपराधी प्रवृत्ति के बच्चों में शामिल हैं। 2011 में

भारतीय सभ्य समाज की शायद आज भी उन पर बताए गए जरूरतमंद बच्चों को सारा समर्थक, प्यार और स्नेह यहां तक कि कानूनी संरक्षण देने से भी कोई परहेज नहीं है। परंतु कानून में विश्वास के वर्तमान संकट के मूल में एक बाल अपराधी या कानून से टकरा रहे बच्चे, जिसे बाल अपराध न्याय व्यवस्था अधिनियम, 2000 की धारा 2 (1) एक ऐसे बच्चे के रूप में परिभाषित करती हैं, जो कोई अपराध करने का आरोपित है और जिसने ऐसे आपराधिक कृत्य वाले दिन अठारह वर्ष की आयु पूरी न की हो, के साथ किया जा रहा व्यवहार है। 16 दिसम्बर 2012 के दिल्ली गैंगरेप केस के परिणामस्वरूप मीडिया सहित कुछ गैर जानकार तबकों ने एक किशोर (छह आरोपितों में से एक) को उनमें से सबसे अधिक वहशी बताया और बलात्कार पीड़िता जो उचित रूप से कानून में बदलाव लाने की देशव्यापी मांग का प्रतीक बन गई-के साथ सहानुभूति दर्शाते हुए उसके खिलाफ उग्र जनमत बना दिया। यद्यपि अति प्रशंसित जस्टिस जे.एस.वर्मा समिति, सरकार और सर्वोच्च न्यायालय बाल किशोर हित के खिलाफ ऐसे किसी कानूनी बदलाव के पक्ष में नहीं थे, इस बारे में तीव्र बहसें अब भी जारी हैं।

> अमेरिकी बच्चों ने 1,29,456 अपराध किए। इसकी तुलना में भारतीय बच्चों ने 33,887 अपराध किए जो कुल अपराधों का महज दो फीसद है

समेकित तंत्र की रचना

इस पृष्ठभूमि में आम आदमी के लिए उन कानूनी प्रक्रियाओं को समझना सचमुच जरूरी है, जो आज प्रचलित हैं और जिसे बाल अपराध न्याय व्यवस्था अधिनियम के अधीन मोटे तौर पर बाल अपराध न्याय व्यवस्था कहा जाता है। जैसा उन पर बताया गया है, भारत में लगभग 150 वर्ष तक विकसित हुए बाल अपराध न्याय अधिनियम की परिणति राष्ट्रीय स्तर के चिल्ड्रेन्स एक्ट 1960 के रूप में हुई जिसमें बाल अपराध न्याय व्यवस्था अधिनियम 1986 के अधीन भारी बदलाव किए गए और जो अंततः एक नए कानून बाल अपराध न्याय व्यवस्था (बच्चों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम 2000/2006 के रूप में सामने आया। यह व्यापक अधिनियम कानून और न्याय की एक संपूर्ण व्यवस्था प्रस्तुत करता है और बच्चों की विभिन्न श्रेणियों के सर्वोत्तम हितों की रक्षा के लिए व्यावहारिक रूप से दंड न्याय व्यवस्था और उसके तंत्र को प्रतिस्थापित कर देता है। किशोर न्याय बोर्ड जो एक दंड न्यायालय के समकक्ष है और उसमें एक न्यायाधीश और दो सामाजिक कार्यकर्ता होते हैं, डिस्पोजिशंस, नामक सात आदेशों में से एक को पारित करने के लिए जांच और आगे की कार्यवाही अपने हाथ में लेता है, उपरोक्त सात आदेशों में से अंतिम आदेश (बाल अपराध न्याय अधिनियम की धारा 15 (जी) और 16) किशोर को तीन साल तक की अवधि, जो उसकी 21 वर्ष की आयु तक जा सकती है, की नजरबंदी का प्रावधान करता है।

यह कानून बाल कल्याण समिति, विशिष्ट किशोर पुलिस इकाई, किशोर/बाल संरक्षण पुलिस अधिकारी, बाल संरक्षण इकाई, चाइल्ड हेल्पलाइपन, किशोर एवं बाल सुधार गृह और आश्रम जैसी उप-व्यवस्थाओं और हितधारकों के लिए प्रावधान करता है। यह वैकल्पिक विधिक व्यवस्था इस मान्यता और विश्वास के साथ की एक जरूरतमंद बच्चा और कानून से टकरा रहा किशोर एक ही व्यक्ति हो सकता है जैसा उपरोक्त भयानक गैंगरेप के मामले में किशोर अपराधी था, एक समेकित और पूरक तंत्र की रचना करती है। इस लड़के को दस वर्ष की आयु में भयंकर गरीबी झेल रहा अपना परिवार छोड़ना पड़ा था और अपना अस्तित्व बचाने के लिए छिटपुट काम करते हुए वह गलियों और कार्यस्थलों के बीच भटकता रहा था, जब तक कि उस विनाशकारी शाम को वह असली पाशविक गैंग लीडर, जिस पर उस किशोर के 8,000 बकाया था, उस भयंकर अपराध के लिए साथ नहीं ले गया और जिसने उसे देश के सबसे घृणित खलनायकों में से एक बना दिया। सही या गलत, कानून ने हस्तक्षेप किया और उसे संरक्षण दिया, जो उसे सुधरने का एक मौका दे सकता है, ऐसा संरक्षण दंड प्रक्रिया संहिता (धारा 360) तथा प्रोवेशन ऑफ अफेंडर्स एक्ट, 1958 के तहत युवा वयस्क अपराधियों को भी उपलब्ध है।

भारत के नौ राज्यों (केंद्र शासित प्रदेशों) में कार्यरत और सीधे-सीधे 40 से 50 हजार वंचित और शोषित बच्चों, युवाओं और महिलाओं की सेवा कर रही राष्ट्रीय स्तर की संस्था 'प्रयास' की ओर से सरकार के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय से हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया गया और बच्चे/किशोर की आयु 18 वर्ष को बनाए रखने का फैसला आया। अब तक यह कानून अपरिवर्तित है। उससे पहले कि इसमें कोई बड़ा बदलाव लाने के लिए हम कूद पड़े, हमारे लिए यह जानना बहुत जरूरी है कि पूरी दुनिया के बच्चों की तुलना में भारतीय बच्चे सबसे कम आक्रामक और अपराधी प्रवृत्ति के बच्चों में शामिल हैं। वर्ष 2011 में अमेरिकी बच्चों ने 1,29,456 अपराध किए इसकी तुलना में इसी वर्ष भारतीय बच्चों ने 33,887 अपराध किए जो कुल अपराधों का महज दो फीसद है जबकि अंतहीन संघर्षों और संकटों से जूझती भारत की अत्यधिक निर्धन और वंचित आबादी का 42 फीसद बच्चे हैं।

राष्ट्रीय सहारा 07.09.2013

राहत का फैसला

मुद्दा

रुचिरा गुप्ता

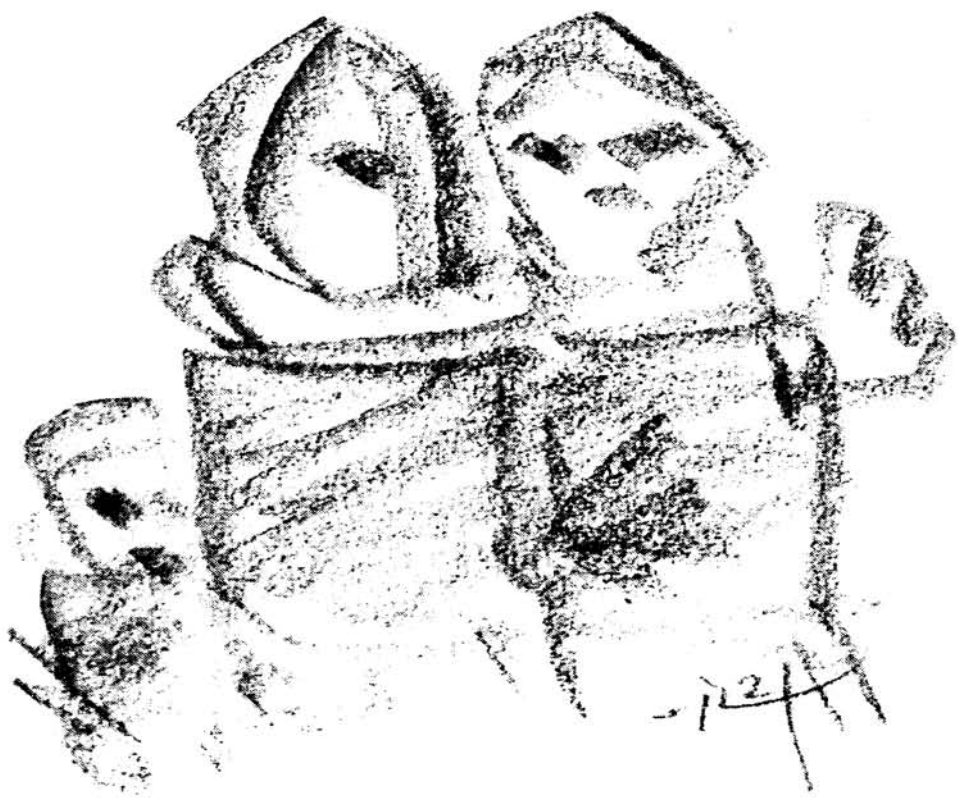

मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति सीएस करनन ने जब एक ऐसी महिला को गुजारा भत्ता देने का आदेश दिया, जिसका प्रेमी उसके दो बच्चों का पिता होने के बावजूद उनकी जरूरतों के लिए आवश्यक खर्च देने से मना कर रहा था, तो उसे कुछ सफलता और राहत महसूस हुई होगी। बगैर विवाह के पैदा हुए बच्चे के पालन पोषण के लिए पुरुष को जिम्मेदार ठहरा कर न्यायमूर्ति ने अविवाहित माताओं के लिए समान स्थितियां पैदा कर दी हैं, जबकि बच्चों के लिए यह राहत की बात है। यौन संबंध और प्रजनन दो लोगों के बीच होता है इसलिए दोनों को इसकी जिम्मेदारी उठानी चाहिए। इसमें इस बात का कोई मतलब नहीं है कि उनके संबंधों की वैधानिक स्थिति क्या है।

हममें से बहुत सारे लोग अमिताभ बच्चन की फिल्में देख कर बड़े हुए हैं, जिसमें हमेशा मां की भूमिका निभाने वाली निरुपमा राय को उसका पति या प्रेमी छोड़ दिया करता था। एक फिल्म में उन्हें अपने बच्चों का पालन करना पड़ा था। इनमें एक अपराधी बना और दूसरा पुलिस अधिकारी। दोनों उस समाज से न्याय की मांग करते हैं, जिसने एक व्यक्ति को इतनी शक्ति दी कि वह बच्चे तो पैदा कर सकता है, पर उनके पालन-पोषण की जिम्मेदारी उठाने को बाध्य नहीं।

इन फिल्मों में भारत की कई अविवाहित माताओं की तकलीफों का चित्रण है। ये महिलाएं दोयम दर्जे की हो गई थीं, सिर्फ इसलिए कि उन्होंने सहमति या बगैर सहमति के विवाह पूर्व यौन संबंध बनाया था। ये महिलाएं इतनी जिम्मेदार और अपने बच्चों से प्रेम करती थीं कि उनका साथ नहीं छोड़ती थीं। पर आखिरकार स्थिति यह होती थी कि वे सामाजिक और आर्थिक तौर पर हाशिए पर पहुंचा दी जाती थीं।

देश भर का आंकड़ा उपलब्ध नहीं है, पर केरल की अनुसूचित जाति और जनजाति विभाग द्वारा किए गए सर्वेक्षण से राज्य में पांच सौ तिरसठ बिनब्याही मांओं का पता चला। मगर केरल के महिला आयोग ने वास्तविक संख्या को दो हजार से ज्यादा बताया। डिप्टी पुलिस इंस्पेक्टर जनरल एस. श्रीजीत के नेतृत्व में की गई जांच से पता चला कि आदिवासी क्षेत्रों में एक हजार से ज्यादा अविवाहित माताएं हैं। केडब्ल्यूसी के मुताबिक ज्यादातार बिनब्याही माताएं चौदह से बीस साल की हैं और वे अपने तथा अपने बच्चों के भरण-पोषण के लिए आखिरकार वेश्यावृत्ति को मजबूर हुईं।

दलित और आदिवासी समुदाय में आज भी अनेक ऐसी बिनब्याही माताएं हैं, जो ऊंची जाति के पुरुषों के यौन उपयोग के लिए नियति के रूप में उपलब्ध रहने को मजबूर कर दी गई हैं। ऐसे यौन संबंधों से पैदा होने वाले बच्चे सस्ती मजदूरी के लिए उपलब्ध होते हैं, जिन पर भारत की अर्थव्यवस्था चलती है। महिला के विकल्प पहले ही बंद हो जाते हैं, क्योंकि उसका समय और संसाधन बच्चे के पालन-पोषण में खत्म हो जाता है।

न्यायमूर्ति करनन के आदेश से एक परंपरा की शुरुआत हो सकती है और यह महिलाओं को शादी के बाद या शादी के बगैर बच्चों के पिता पर वित्तीय जिम्मेदारी डालने का अपना नुकसान करने वाले विकल्प का उपयोग करने से आजाद करेगा।

रामायण, महाभारत और उपनिषदों में भारतीय संस्कृति के चित्रण से भिन्न सोच वाले समूहों के बीच संघर्ष का पता चलता है। उसमें ऊंची जाति के लोगों के नजरिए से क्या सही है और दलित और आदिवासी समूहों के नजरिए से क्या सही- इसका पता चलता है। इतिहास की भिन्न अवधि में कानून और कोड लिखे जाते हैं, उन्हें चुनौती दी जाती है और वे फिर से लिखे जाते हैं। उपनिषद में ऋषि गौतम बिनब्याही मां जबाला का सम्मान करते और उनके बेटे सत्यकाम के पालन पोषण की सामाजिक जिम्मेदारी उठाते हैं। इसके लिए उसे सौ गाएं दान देते हैं। यह तुलसी रामायण में राम के व्यवहार से अलग है, जो एक धोबी के लव-कुश के पितृत्व पर सवाल उठाने से सीता को छोड़ देते हैं।

न्यायमूर्ति कनन के आदेश से उन हजारों महिलाओं को राहत मिलेगी, जो चाहती हैं कि उनके संबंध से पैदा हुए बच्चे के लालन-पालन की जिम्मेदारी उनके प्रेमी साझा करें, पर वे उनसे शादी करना नहीं चाहती हैं।

अदालतें और परिवार अक्सर युवतियों को अपने बलात्कारी से शादी करने का आदेश देकर जबरदस्ती शादी के फंदे में फंसा देते हैं। यह पुराने पितृसत्तात्मक सोच का असर है कि महिला उसी पुरुष की होती है जो उसका कौमार्य भंग करता है। और कई महिलाएं अकेले बच्चे का पालन करने के लंबे भविष्य के मद्देनजर इस आर्थिक आवश्यकता और सामाजिक कलंक के आगे मजबूर होती हैं।

आज, यौन संबंधों में पुरुष की जिम्मेदारी ज्यादा से ज्यादा यही है कि वे शादी के जरिए महिला को रहने और खाने की सुविधा दें या फिर निरोध का उपयोग करें। शादी को एक ऐसा पुरस्कार समझा जाता है जो पुरुष महिलाओं को 'अच्छा' होने के बदले देते हैं। इससे महिलाओं को अपने और अपने बच्चों के लिए घर और संपत्ति पर कानूनी अधिकार मिलता है। हजारों बच्चों और उनकी मांओं के लिए शादी और वैधता के बीच का संपर्क कानूनी और सामाजिक तौर पर इतना मजबूत रहा है कि यह कई पुरुषों के लिए नियंत्रण का हथियार बन गया है।

न्यायमूर्ति करनन के आदेश से एक परंपरा की शुरुआत हो सकती है और यह महिलाओं को शादी के बाद या शादी के बगैर बच्चों के पिता पर वित्तीय जिम्मेदारी डालने का अपना नुकसान करने वाले विकल्प का उपयोग करने से आजाद करेगा। हालांकि, एक समाज के रूप में हमें अभी काफी दूरी तय करनी है, ताकि पितृत्व के लिए प्रगतिशील और समान नियम बना सकें। पुरुषों को न सिर्फ बच्चों की जरूरतों के लिए आर्थिक सहायता देने की आवश्यकता है, बल्कि उन्हें बच्चे के पालन-पोषण में भी हिस्सा लेना चाहिए। अगर पुरुष बच्चों की देखभाल में ज्यादा समय लगाएं तो परिवार के अंदर होने वाली हिंसा और दमन में कमी आ सकती है।

अक्सर सामाजिक परिवर्तन की शुरुआत कानूनी बदलाव से होती है। कानूनी ढांचे और नियम अक्सर समाज के कतिपय वर्गों को आखिरकार जायज या नाजायज ठहराने का काम करते हैं। हम जानते हैं कि समलैंगिकता को अपराध बनाने वाले अंग्रेजों के कानून अब भी समलैंगिकों के आसपास घोटाला सूंघते हैं। हजारों भारतीय समुदायों को अंग्रेजों ने अपराधी जनजाति घोषित कर दी थी और वे अब भी चोर के कलंक का सामना करते और शिक्षा और रोजगार से वंचित हैं। इससे कई पीढ़ियां वेश्यावृत्ति में लगी हुई हैं। हम जानते हैं कि वेश्यावृत्ति करने वाली महिलाएं खुद को और मुख्यधारा के समाज द्वारा भी खराब मानी जाती हैं, जबकि उनका शोषण करने वाले पुरुषों को सिर्फ पुरुष होने के नाते माफी मिल जाती है। इसका एक कारण यह है कि सार्वजनिक स्थल पर ग्राहक तलाशने के लिए मानव तस्करी निरोधक कानून के तहत दलालों और ग्राहकों की तुलना में महिलाएं ज्यादा गिरफ्तार की जाती हैं। आपराधिक रिकार्ड आखिरकार महिलाओं का ही बनता है। ❑

जनसत्ता 07.07.2013

तलाकशुदा हिंदू महिलाओं को पति की संपत्ति में हक

विवाह विधि संशोधन विधेयक पर लगी संसद की मुहर

नई दिल्ली (एसएनबी)। राज्यसभा ने सोमवार को 'विवाह विधि संशोधन विधेयक 2010' को मंजूरी दे दी। लोकसभा इसे पहले ही पारित कर चुकी है। विधेयक पर संसद की मुहर लगने के साथ ही अब तलाक के बाद हिन्दू महिलाओं को पति की संपत्ति में हिस्सा मिलेगा। अब तलाक होने की स्थिति में पति की संपत्ति में पत्नी और बच्चो का अधिकार सुनिश्चित होगा। विधेयक में तलाक की स्थिति में पत्नी को पति की अचल संपत्ति से मिलने वाले हिस्से की मात्रा को निर्धारित नहीं किया गया है। यह तय करने का काम अदालत पर छोड़ दिया गया है।

विधेयक पर चर्चा का जवाब देते हुए कानून मंत्री कपिल सिब्बल ने कहा, पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं को अधिकार दिलाने के लिए यह विधेयक काफी महत्वपूर्ण साबित होगा। इसके तहत पति की स्वअर्जित संपत्ति में से पत्नी को अधिकार मिलेगा। यह प्रावधान चल संपत्ति पर भी लागू होगा। उन्होंने कहा, तलाक के दौरान सभी तथ्यों पर विचार कर न्यायाधीश फैसला करेंगे कि पत्नी को कितना गुजारा भत्ता दिया जाना चाहिए। अगर अदालत के फैसले से असहमति हो तो उच्च अदालतों में उसे चुनौती दी जा सकती है।

सिब्बल ने कहा, विधेयक में महिला और पुरुष दोनों का ही ध्यान रखा गया है। उन्होंने कहा, कुल आबादी में महिलाओं की संख्या 50 फीसदी होने के बावजूद संपत्ति का 98 फीसदी हिस्सा पुरुषों के पास होता है। ऐसे में विधेयक के माध्यम से यह संदेश जाना चाहिए तलाक के बाद महिलाओं का भविष्य सुरक्षित होगा। सिब्बल ने कहा, विशेष विवाह कानून के तहत विवाह का पंजीकरण होने पर किसी भी धर्म की महिला और पुरुष साथ भेदभाव वाली बात नहीं है। इसमें सभी धर्म के लोगों के लिए वैवाहिक सुरक्षा की बात है। दो नागरिक बराबर के हकदार हैं और विशेष विवाह कानून के तहत विवाह कर सकते हैं। सिब्बल ने कहा, तलाक का फैसला तब तक नहीं होगा जब तक यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि विवाह से जन्म लेने वाले बच्चों के पालन-पोषण के लिए दोनों पक्षों की वित्तीय स्थिति के अनुरूप समुचित व्यवस्था की गई है।

■ अचल संपत्ति से मिलने वाले हिस्से की मात्रा का निर्धारण अदालत पर छोड़ दिया गया

मुस्लिम महिलाओं को मिले हिस्सा : विधेयक पर चर्चा की शुरुआत करते हुए भाजपा की नजमा हेपतुल्ला ने सभी धर्म की महिलाओं के लिए एक जैसा कानून की वकालत करते हुए हिंदू महिलाओं की तर्ज पर मुस्लिम महिलाओं को भी तलाक के बाद पति की जायदाद में हिस्से की मांग की। विगत 30 अप्रैल को सदन में पेश इस विधेयक पर चर्चा की शुरुआत करते हुए उन्होंने कहा कि भारतीय सभ्यता और पाश्चात्य सभ्यता अलग-अलग है। हमारे समाज में तलाक को लक्जरी के रूप में नहीं बल्कि मजबूरी के रूप में लिया जाता है। उन्होंने आरोप लगाया कि यूपीए सरकार ने 10 करोड़ मुस्लिम महिलाओं के बारे में नहीं सोचा है। इस विधेयक से हिंदू बहनों की समस्याओं का समाधान तो होगा लेकिन दूसरे धर्मों की महिलाओं का क्या होगा। उन्होंने कहा, संविधान ने सभी को समानता का अधिकार दिया है लेकिन इस विधेयक में इस पर गौर नहीं किया गया है। उन्होंने कहा, शाहबानो केस के बाद बने कानून में मुस्लिम महिलाओं के कल्याण के लिए किसी तरह की तब्दीली नहीं की गई थी।

भेदभाव का सवाल नहीं : कांग्रेस की रेणुका चौधरी ने कहा, यह सरकार किसी तरह का भेदभाव किए बगैर सभी महिलाओं को एक ही नजरिया से देखती है। किसी भी महिला के साथ भेदभाव का सवाल ही नहीं है। कांग्रेस के राम प्रकाश ने तलाक के पुराने मामलों के समाधान की अपील करते हुए कहा कि दहेज अधिनियम का दुरुपयोग हो रहा है। उसी तरह से इस विधेयक का भी दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा, इसमें आर्थिक सुरक्षा की बात कही गई है। इस तरह की दंपति के बच्चो के लिए भावनात्मक सुरक्षा की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

पति को भी मिले हक : बसपा के नरेन्द्र कुमार कश्यप ने तलाकशुदा परिवार के बच्चों का मुद्दा उठाते हुए कहा कि पत्नी के नाम वाली संपत्ति में पति को भी हक मिलना चाहिए। आज पुरुष अपनी पत्नी के नाम संपत्ति खरीदता है। तलाक की स्थिति में उसमें पति को हिस्सा मिलना चाहिए। माकपा की झरना दास बैद्य ने कहा, महिलाओं को सिर्फ पुश्तैनी संपत्ति में ही नहीं बल्कि अर्जित संपत्ति में भी हिस्सा मिलना चाहिए।

दुरुपयोग रोकने के उपाय हों : समाजवादी पार्टी के अरविंद कुमार सिंह ने कहा, इस विधेयक से ऐसा प्रतीत होता है कि तलाक के लिए सिर्फ पुरुष जिम्मेदार हैं। नौकरी करने वाली महिला की तलाक की स्थिति में उसके बेरोजगार पति को गुजारा भत्ता दिए जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसका दुरुपयोग होने की पूरी संभावना है। ऐसी स्थिति में इसको रोकने के उपाय भी किए जाने चाहिए।

राष्ट्रीय सहारा 27.08.2013

महिलाओं का शोषण कोई नई बात नहीं है। सदियों से वे शारीरिक और यौन हिंसा का दंश सहती रही हैं। यह अलग बात है कि जीवन के इस कड़ुवे अनुभव के बाद इन महिलाओं के स्वास्थ्य पर इसका क्या असर पड़ता है, इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। डब्ल्यूएचओ ने दुनियाभर में महामारी जैसे फैलते स्त्री-शोषण के फलस्वरूप उनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले नकारात्मक असर पर गहन अध्ययन के बाद रिपोर्ट जारी की जिस पर गंभीरता से विचार करना जरूरी है

संक्रामक रोग बनता स्त्री-शोषण

■ सपना श्रीवास्तव

भले ही आज महिलाएं अंतरिक्ष में अपना परचम लहरा रही हैं लेकिन एक सच्चाई यह भी है कि इन पर होने वाले शोषण के ग्राफ में भी लगातार इजाफा हो रहा है। वे न केवल घर के बाहर असुरक्षित हैं बल्कि घर के अंदर भी उनकी सुरक्षा को लेकर सवाल उठते रहे हैं। दुनियाभर में महिलाओं की बड़ी संख्या घरेलू हिंसा की शिकार होती है। आमतौर पर महिलाएं पति या किसी परिचित द्वारा ही सताई गई होती हैं। यानी वे जिस व्यक्ति को अपने सुख-दुख का साथी मानती हैं, वही अक्सर उनके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी का कारण बनता है। चिंता की बात यह भी है कि शोषण और हिंसा का शिकार महिलाओं को गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यानी ऐसी महिलाओं को शारीरिक, मानसिक और स्वास्थ्य संबंधी चौतरफा मार झेलनी पड़ती है।

हाल ही में वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन (डब्ल्यूएचओ) ने एक रिपोर्ट जारी की जिसमें बताया गया है कि दुनियाभर में दस में से तीन महिलाएं अपने पति या पूर्व साथी द्वारा थप्पड़, लात-घूंसे, बलात्कार या किसी दूसरे प्रकार से हिंसा का शिकार बनती हैं जबकि दस से में से एक महिला पति से इतर किसी अन्य पुरुष के हाथों यौन शोषण का शिकार होती है। वहीं, दस में से तीन महिलाओं की उनके पति द्वारा ही हत्या कर दी जाती है। ये डरावने आंकड़े महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा का पहला वैश्विक और सुव्यवस्थित आकलन हैं। ये आंकड़े 'वेकअप कॉल' हो सकते हैं। इसके जरिये ऑर्गनाइजेशन यह साबित करना चाहता है कि यह बड़ी समस्या है जो दुनिया के हर हिस्से में मौजूद है और इसे किसी भी रूप में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

ये आंकड़े बढ़ते लिंग भेद संबंधी हिंसा को आंकने के लिए वर्षों के गंभीर प्रयत्नों का नतीजा हैं। अब से 15- 20 बरस पहले तक घरेलू हिंसा को व्यक्तिगत माना जाता था जिसमें सरकार या कोई दूसरी संस्था कम ही दिलचस्पी लेती थी। लेकिन वैश्विक परिदृश्य में महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा के बढ़ते आंकड़ों के कारण इस पर सबकी नजर पड़ रही है। नतीजतन, आज महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा 'मुद्दा' बन चुकी है।

गंभीर समस्याएं

रिपोर्ट का शीर्षक 'ग्लोबल एंड रीजनल एस्टिमेट्स ऑफ वायलेंस एगेंस्ट वुमेन : प्रीवलेंस एंड हेल्थ इफेक्ट ऑफ इंटीमेट पार्टनर वायलेंस एंड नॉन-पार्टनर सेक्सुअल वायलेंस' है। इस रिपोर्ट की अहम बात यह है कि जो महिलाएं किसी कारणवश शारीरिक या यौन शोषण का शिकार होती हैं, उनमें स्वास्थ्य संबंधी गंभीर समस्याएं भी पाई जाती हैं। डब्ल्यूएचओ की मुखिया मारग्रेट चान के अनुसार महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा एक वैश्विक स्वास्थ्य समस्या है जो संक्रामक रोग के समान फैलती जा रही है। अध्ययन में दुनियाभर के स्वास्थ्य अधिकारियों को महिलाओं के शोषण पर रोकथाम और पीड़ित को बेहतर सुरक्षा मुहैया कराने के लिए गाइडलाइन बनाने की सलाह दी गई है।

हालांकि, रिपोर्ट में जिन बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है वे भले ही नई या अचरज में डालने वाली न हों लेकिन चिंतित अवश्य करती हैं। महिलाओं के खिलाफ जितने भी अत्याचार होते हैं उनमें से ज्यादातर उनके अंतरंग साथी या पति द्वारा ही किये जाते हैं। डब्ल्यूएचओ का अनुमान है कि लगभग एक तिहाई (तीस प्रतिशत) महिलाएं जो रिलेशनशिप में हैं, वे अपने अंतरंग साथी द्वारा यौन और शारीरिक हिंसा का सामना करती हैं जबकि सात प्रतिशत महिलाएं परिचित पुरुषों द्वारा यौन शोषण का शिकार बनती हैं।

जारी पेज 2

आंकड़ों की जुबानी शोषण की कहानी

लदन स्कूल ऑफ हाइजिन एंड ट्रॉपिकल मेडिसिन और साउथ अफ्रीकन मेडिकल रिसर्च काउंसिल द्वारा जारी इस रिपोर्ट में जो बातें कही गई वे इस प्रकार हैं-

- पति द्वारा पत्नी का शोषण आम बात है। दुनियाभर की लगभग तीस प्रतिशत महिलाएं इस तरह के शोषण का सामना करती हैं। शोषित महिलाओं में से लगभग 38 प्रतिशत की हत्या उनके पति द्वारा और 42 प्रतिशत महिलाएं पति के शारीरिक या यौन शोषण के चलते घायल होती हैं। इन महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी गंभीर समस्याएं होती हैं, जिनमें लगभग 16 प्रतिशत महिलाएं कम वजन वाले बच्चों को जन्म देती हैं।
- परिचित पुरुष या पुरुष मित्र द्वारा पीड़ित महिलाओं को उन महिलाओं की तुलना में, जो हिंसा का शिकार नहीं होती, 2.6 गुना ज्यादा डिप्रेशन और एंजाइटी की समस्या होती है।
- दुनिया के कई क्षेत्रों में पति की हिंसा का शिकार महिलाओं में उन महिलाओं की तुलना में जो पति की हिंसा का शिकार नहीं होती, एचआईवी होने का खतरा डेढ़ गुना ज्यादा होता है।
- ऐसी पीड़ित महिलाओं को अल्कोहल की समस्या, गर्भपात, यौन-सचारित रोग और एचआईवी होने का खतरा रहता है।

World Health Organization

दुनियाभर में डब्ल्यूएचओ के विस्तृत क्षेत्र में आने वाले देशों में पति द्वारा हिंसा की शिकार महिलाओं की संख्या

निम्न और मध्यम आयवर्ग वाले क्षेत्र

- *अफ्रीका (बोत्सवाना, कैमरून, कांगो, इथियोपिया, कीनिया, लाइबेरिया, मालावी, मोजाम्बिक, नामीबिया, रवांडा, साउथ अफ्रीका, स्वाजीलैंड, यूगांडा, तंजानिया, जाम्बिया, जिम्बाब्वे)* 36.6 %
- *अमेरिका (ब्राजील, चिली, कोलम्बिया, कोस्टा रिका, डॉमनिकन रिपब्लिक, हैती, जमैका, मैक्सिको, निकारागुआ, पेरू, बोलीविया)* 29.8 %
- *पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र (मिस्र, ईरान, इराक, जॉर्डन, फलस्तीनी क्षेत्र)* 37.0 %
- *यूरोप (अल्बानिया, अजरबैजान, जॉर्जिया, लिथुआनिया, रिप. ऑफ माल्डोवा, रोमानिया, रूस, सर्बिया, टर्की, यूक्रेन)* 25.4 %
- *दक्षिण-पूर्व एशिया (बांग्लादेश, पूर्वी तिमोर, भारत, म्यांमा, श्रीलंका, थाईलैंड)* 37.7 %
- *पश्चिमी प्रशांत (कम्बोडिया, चीन, फिलीपीन्स, सामोआ, वियतनाम)* 24.6 %
- *उच्च आय वर्ग (आस्ट्रेलिया, कनाडा, क्रोएशिया, डेनमार्क, फिनलैंड, फ्रांस, जर्मनी, हांगकांग, आइसलैंड, आयरलैंड, इस्राइल, जापान, हॉलैंड, न्यूजीलैंड, नार्वे, पोलैंड, कोरिया, स्पेन, स्वीडन, स्विट्जरलैंड, यूके, यूएस)* 23.2 %

ऐसी महिलाओं का प्रतिशत जो अपने पति नहीं बल्कि किसी अन्य पुरुष द्वारा हिंसा का शिकार होती है : अफ्रीका 11.9 %, अमेरिका 10.7 %, यूरोप 5.2 %, दक्षिण-पूर्व एशिया 4.9 %, पश्चिमी प्रशांत क्षेत्र 6.8 % और उच्च आय वाले देशों में 12 %

तंग रिवाजों से बाहर निकलें

■ सुमन ओक
अन्धविश्वास निर्मूलन समिति कार्यकर्ता

अब वह समय आ गया है जब हम, जन सामान्य, धार्मिक अथवा अन्य लोगों को यह निर्णय लेना चाहिए कि किस हद तक आस्था और धार्मिकता हमारे मस्तिष्क और इरादे में जगह बनाये। सभी अन्य संस्थानों की तरह धर्म भी एक प्रकार का संस्थान है, जो पहले समाज में हमारी स्थिरता की आवश्यकता को विकसित या प्रस्थापित करता है और इसकी संस्कृति का हिस्सा है। हर संस्कृति के दो पहलू अथवा अवस्थिति होती है। पहला बौद्धिक शिक्षाप्रद तथा दूसरा सामाजिक आचरण से सम्बन्धित है। भारतीय संस्कृति के बौद्धिक पहलू की नींव हमारे प्राचीन ऋषियों द्वारा निर्धारित की गई थी। वे अज्ञान से ज्ञान की प्रगति के लिए प्रयासरत थे। उनका अंतिम लक्ष्य सत्यम, शिवम, सुंदरम (सत्य, कल्याणकारी और सौंदर्य) था। इन संतों ने जो भी बहस व चर्चाएं कीं, उन्हें बाद में अपनी पीढ़ियों में पारित कर दिया जो कि आज की अन्धदौड़ में मेहनतकश जनता की समझ से परे है। अन्य पहलू यानी, सामाजिक आचरण बुद्धिमान लेकिन चतुर और तेज पुरुषों द्वारा महात्माओं के उदात्त दर्शन को ध्यान में रखकर लिया गया था। जनसमुदाय की नैतिक ईमानदारी के लिए उन्होंने कर्मकाण्डी उपासना और विश्वास को सुदृढ़ किया। इसके साथ समाज को सामाजिक-आर्थिक-प्रशासनिक ढांचे में बांधने के लिए उन्होंने 'स्मृतियों' को भी संकलित किया।

परिभाषित की जाएं सांस्कृतिक प्रथाएं

इन सभी योजनाओं और रणनीतियों के साथ वे जनमानस में संदेहरहित, नेकदिल विश्वास और एक अडिग स्वीकृति पैदा करने में कामयाब रहे। हममें से प्रत्येक का चित्त आज इस मानसिकता से प्रभावित है। हममें से अधिकतर लोग अपनी भूमिका को स्वीकार करते हैं और समाज द्वारा दी गई जिम्मेदारी को ईमानदारी से बिना यह सोचे ही पूरा करते हैं कि क्या इसकी बेहतरी या परिष्करण के लिए कोई परिवर्तन संभव है, जो हमें विरासत में मिली है तथा पारम्परिकतापूर्वक सभी अनुष्ठानों का पालन करते हैं। अगर कोई भी इन प्रथाओं में हस्तक्षेप करने की कोशिश करता है तो हम नाराज हो जाते हैं। इस बात पर कभी हमारा ध्यान केंद्रित नहीं होता कि सांस्कृतिक प्रथाओं को सही प्रकार से सूचित अथवा आधुनिक संदर्भों में परिभाषित

पश्चिमी परिदृश्य थोड़ा अलग है क्योंकि उन देशों में बुद्धिजीवी गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, आदि में अध्ययन और अनुसंधान के लिए उन्मुख हुए हैं। उनके प्रयासों के माध्यम से पश्चिमी संस्कृति अपने हितैषी विश्वास के कारण आये ठहराव से बाहर निकलकर प्रगतिशील हो गयी है। उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने जीवन को अधिक धर्मनिरपेक्ष बनाया है। भारत में भी कई खगोलविद् गणितज्ञ, चिकित्सक, शल्य चिकित्सक आदि हुए हैं। लेकिन चतुर ब्राह्मणों ने प्रगतिशील वैज्ञानिक संस्कृति और शिक्षाप्रद ज्ञान को इस डर से दलित, गरीब तक पहुंचने नहीं दिया कि इससे उनकी ज्ञान की भूख बढ़ जाएगी। उन्होंने दलितों को सीखने से प्रतिबंधित कर दिया और उन्हें धार्मिक अनुष्ठानों, पूजा-प्रार्थना, तीर्थ और त्योहारों के पालन में डुबो दिया और 'दूसरी दुनिया' के प्रति उनकी दृष्टि बदल दी। आज भी हमारे दृष्टिकोण में ये चीजें 'दूसरी दुनिया' की भ्रांति बनी हुई हैं, जो हमारी कमजोर मानसिकता और बौद्धिक जड़ता को दर्शाता है जबकि हम यह भलीभांति जानते हैं कि शिक्षा के लिए हर भारतीय का अधिकार संविधान में निहित है और हममें से बहुत से शिक्षित भी हैं।

अनुष्ठान और पर्व के आधुनिक संदर्भ तलाशें

हमें इस कमजोरी और जड़ता से उबरना होगा; साथ ही अनुष्ठान और धार्मिक पर्व के बारे में नये सिरे से सोचना शुरू करना होगा। विशेषकर उन धार्मिकताओं और रस्मों-रिवाजों के बारे में जिनकी वजह से हमारी महिलाएं आज भी घर की चहारदीवारी के भीतर जंजीरों से कैद हैं। इन सभी प्रथाओं को बनाये रखना हानिकारक और मानव गरिमा के लिए अपमानजनक है तथा इन्हें झट से खारिज किया जाना चाहिए और सिर्फ आवश्यक स्वस्थ प्रथाओं को बनाये रखना होगा जिससे कि सभी का भावनात्मक विकास हो सके। हमें यह ध्यान रखना ही होगा कि हम अपनी धार्मिक प्रथाओं के साथ-साथ परिवारिक, सामाजिक, वित्तीय दायित्वों के बीच कितना समय दे सकते हैं।

इलस्ट्रेशन जे.पी. त्रिपाठी

भारतीय मनीषा 33 करोड़ हिन्दू देवी-देवताओं के साथ दुनिया के अन्य एकेश्वरवादी धर्मों के अतिरिक्त देवताओं को समाहित करने को राजी नहीं है। इसलिए हम देवताओं को स्थापित करने के नाम पर पता नहीं क्या-क्या करते हैं; जिनमें ऐहिक नदियां, देवी-देवता, पहाड़, पत्थर, जानवर, पेड़, भूत, संत, फकीर और भी न जाने क्या-क्या आते हैं। इसके बजाय संरक्षण योग्य श्रद्धेय नदियों, पहाड़ों, पेड़ों और जानवरों आदि को हम धर्म के नाम पर बलि चढ़ा देते हैं। सबसे अधिक कष्टप्रद तो कुछ 'स्वयंभू' देवता का जन्म होता है, जो मंदिरों में पत्थर के आकार में बैठे व लाल फलक में ढके होते हैं। वफादार और भोले-भाले लोग देवता की आराधना में जुट जाते हैं। मंदिर के पुजारी पूजा शुरू करके आजीविका के लाभदायक साधन जुटाने में लगे रहते हैं। कहीं और एक सुंदर कपड़े को सड़क किनारे की ओर कब्र या समाधि पर फैला दिया जाता है और यह अचानक लोगों के बीच में बहुत लोकप्रिय हो जाता है।

श्रद्धालुओं को विवेकदृष्टि-सम्पन्न करें

हर धर्म में बहुत कुछ अलौकिक शक्तियों के साथ जिंदा या मुर्दा रूप में बाबा, बुवा, भगवान आदि मौजूद हैं। चमत्कारिक बाबा के धर्म की परवाह किये बगैर सभी भारतीयों द्वारा पाला गया यह अन्धविश्वास हमारे देश में राष्ट्रीय एकता का एकमात्र संकेत है। तसल्ली के लिए इन बाबाओं की धार्मिक फंतासियां आस्थावान लोगों का गला काटने के लिए व्यग्र हैं। बनिस्बत इसके कि उन श्रद्धालुओं के हित-लाभ के लिए उन्हें कोई विवेकी दृष्टि दी जाए। आश्चर्यजनक तो यह है कि वे उत्साह से एक दूसरे की अजीब और अलौकिक धार्मिक प्रथाओं में भाग लेते हैं। और अन्य धर्मों के देवताओं को अपने देवता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जो अपने धर्म के संरक्षण के लिए उसकी मूल या प्राचीन प्रकृति की वकालत करते हैं। उन्हें पराये देवताओं, बाबाओं और अनुष्ठानों की इस घुसपैठ के बारे में चिंता नहीं है। इसके विपरीत द्वंद्व उस समय धधकता है, जब प्रशासन उन परम्पराओं को रोकता अथवा प्रतिबंधित करता है जिनसे कानून और व्यवस्था की समस्या पैदा होती है। उदाहरणार्थ नारियल और अन्य सामान जो मुंबई में सिद्धिविनायक की पूजा के लिए ले जाया जा रहा था, उस पर सुरक्षा कारणों से प्रतिबंध लगा दिया गया था।

प्रत्येक को इस बात पर ध्यान देना होगा कि इन बेकार की धार्मिक धारणाओं का क्या नुकसान है क्योंकि इसकी वजह से ही 'नशीली धार्मिकता' में डूबे आम और भोले-भाले लोगों की बुद्धि हर ली गई है। हमें अपनी धार्मिकता और धार्मिक संस्कार, रस्मों और त्योहारों के पालन की दिशा में एक तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यही हमारी महिलाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी की अमानुषिक रिवाजों, प्रथाओं, दस्तूर, रूढ़ियों के दलदल से निकालने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

यह घोषणा पत्र हो महिलाओं का

हमारे देश में महिलाएं अंधविश्वास की सबसे बुरा शिकार हैं। यह भी कि वे इस दौर में अंधविश्वासों के प्रचार की मुख्य एजेण्ट हैं। पूरे समाज को इस तथ्य को समझना और स्वीकार करना होगा जिससे महिलाओं की इस मानसिक गुलामी को खत्म करने के लिए नये रास्ते निकाले जा सकें। महिलाओं में अन्धविश्वासों की जड़ें बहुत गहरी होने के कई कारण हैं। उन्हे पुरुषों की तुलना में कहीं अधिक कठिनाइयों, अवरोधों, निराशाओं और आपदाओं का सामना करना पड़ता है। दूसरा कारण हमारा पुरुष प्रधान समाज है। एक अच्छे पति और एक बेटे की कामना ही एक औरत के जीवन की एकमात्र उपलब्धि है। दुनिया के लगभग सभी धर्मों में लोग हजारों सालों से औरतों के सभी ज्ञान और सीख को नकार कर हमेशा उन्हें द्वितीय दर्जा देते आए हैं। इन धार्मिक शिक्षाओं की जड़ें इतनी गहरी हैं कि महिलाओं को अब यह सब स्वाभाविक लगता है और वे भी धर्म द्वारा लिंग के बीच उत्पन्न किये गये इस असमानता और भेदभाव में मदद करती हैं। उनका समर्थन करती हैं। वह पारम्परिक रीति-रिवाजों को यह जानते हुए भी अपना लेती हैं कि इस दिन में कभी कोई बदलाव नहीं आएगा। एएनएस अंधविश्वास के उन्मूलन के लिए एक मसौदा बनाया है :

- घर में लड़के-लड़कियों के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। इससे लड़कों में अहंकार और लड़कियों में हीनता की भावना नहीं पनपेगी।
- महिलाओं को दूषित माना जाता है और उन्हें कई धार्मिक समारोहों में भाग लेने की इजाजत नहीं दी जाती। इसकी निंदा की जानी चाहिए और इन्हे तत्काल रोका जाना चाहिए।
- महिलाओं की अपनी खुद की स्वतंत्र पहचान होनी चाहिए, उनकी पहचान किसी की पत्नी और बेटी के रूप में नहीं की जानी चाहिए।
- महिलाओं को ठीक उसी तरह अपने भी स्वास्थ्य पर ध्यान देना चाहिए जिस तरह वे अपने पति, बच्चों और घर के अन्य सदस्यों के स्वास्थ का ध्यान रखती हैं। उचित पोषण, सफाई, समय पर टीका और टीकाकरण, आवश्यक दवाइयां और पर्याप्त आराम महिलाओं सहित पूरे परिवार के लिए महत्त्वपूर्ण होता है।
- महिलाओं को अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के हिसाब से यह तय करने का पूरा अधिकार होना चाहिए कि उनके कितने बच्चे हों। साथ ही उनकी वित्तीय क्षमता पर भी विचार किया जाना चाहिए जिससे कि बच्चों को अच्छी सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकें। उनमें इतना साहस हो कि वे सभी बाहरी दबावों का विरोध करने में सक्षम हों।
- आपदाओं से डरने के बजाय उनका सामना करना चाहिए और बुआ और महात्माओं की किसी भी झूठी पेशकश पर अपनी उम्मीदें नहीं रखनी चाहिए।
- हम सब को अंधविश्वास के प्रसार में महिलाओं की छवि के दुरुपयोग करने पर मीडिया, समाचार पत्र, टीवी, फिल्मों की निंदा करनी चाहिए। हमें यह याद रखना चाहिए कि व्यक्तिगत रूप से ऐसा करना असंभव नहीं है।
- बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित किया जाना चाहिए जिससे कि वे अपने अंदर समझदारी और रचनात्मक दृष्टिकोण का विकास करें और एक निडर और शोषण रहित समाज का हिस्सा बन सकें।

राष्ट्रीय सहारा 31.08.2013

किसके दबाव में है सरकार

जवाहरलाल कौल

लेखक वरिष्ठ राजनीतिक टिप्पणीकार हैं।

बेहतर कानून-व्यवस्था के लिए अदालतों को अगर बार-बार चाबुक इस्तेमाल करने की जरूरत पड़े तो समझ लेना चाहिए कि देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था में कुछ गड़बड़ी है। जब लोकतांत्रिक कहलाने वाली सरकारें सर्वोच्च अदालत के बार-बार चेताने पर भी उसके फैसलों पर अमल नहीं करतीं, तो यह मानने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं बचता कि कार्यपालिका न्यायपालिका के आदेश देने को बेवजह हस्तक्षेप मानती है। ऐसी शासन व्यवस्थाएं जब अनियंत्रित हो जाती हैं, तो पहला शिकार लोकहित ही होता है। सर्वोच्च न्यायालय सरकार के रवैए से सख्त नाराज है क्योंकि उसकी हिदायतों को नजरअंदाज करते हुए अब तक एसिड बिक्री को नियमित करने के बारे में कोई नीति नहीं बनाई गई है।

अदालत का आक्रोश एक न्यायाधीश के शब्दों में सामने आया, 'लोग मर रहे हैं, लेकिन आप इससे चिंतित नहीं हैं। उन लोगों के बारे में सोचिए, जो अपनी जान गंवा रहे हैं। हर दिन देश के किसी न किसी क्षेत्र में लड़कियों पर हमले होते रहते हैं।' यह अदालत ने तब कहे, जब सरकारी वकील ने एसिड बिक्री को नियमित करने के बारे में नियम बनाने के लिए और छह हफ्ते का समय मांगा। सात साल से यह मामला अदालतों में लटक रहा है। तीन न्यायमूर्ति आरएस लोढा, मदन लोकूर और कुरिएन जोजेफ ने सरकार से कहा है कि वह इस मामले को गंभीरता से नहीं ले रही है। अदालत ने सरकार को 16 जुलाई तक का समय दिया है और हिदायत दी है कि यह आखिरी मोहलत है। उसके बाद अदालत आदेश देने के लिए मजबूर हो जाएगी।

> एसिड हमले आतंकवादी हमलों की ही तरह होते हैं, छिपकर मारो और भागो। हर आशंकित शिकार के लिए हर समय चौकन्ना रहना संभव नहीं होता। सबसे महत्वपूर्ण बात है कि आक्रमणकारी हमले के सबूत भी नहीं छोड़ता क्योंकि एसिड कहां से लिया, इसे प्रमाणित करना आसान नहीं है। एसिड हर नुक्कड़ पर, हर बाजार में आसानी से मिल जाता है।

एसिड हमले का यह मामला मुंबई की एक महिला लक्ष्मी ने सात साल पहले दायर किया था। सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद लक्ष्मी ने कहा, ...चलो जहां सात साल प्रतीक्षा की, वहां एक सप्ताह और सही। इसके बाद या तो सरकार कोई नीति लेकर आएगी या अदालत सीधे हस्तक्षेप करेगी। इस मामले में मूल याचिकाकर्ता के अतिरिक्त उन सब लोगों और स्वयंसेवी संगठनों की रुचि है, जो देश के विभिन्न भागों में एसिड हमलों के शिकार लोगों की पैरवी कर रहे हैं। इनमें दिल्ली के वे माता-पिता भी हैं, जिनकी बच्ची मुंबई में एसिड हमले की शिकार होकर कुछ समय पहले मर गई। क्यों होते हैं ये हमले? जाति विवाद और नस्लभेद के जमाने में एसिड का इस्तेमाल छोटी नस्ल के लोगों को मारने या घायल करने के लिए किया जाता था।

अब इसे अक्सर औरतों के शोषण के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यह विकृत मानसिकता वाले पुरुषों के अहंकार का प्रतीक है। जो लड़कियां ऐसे पुरुषों की इच्छाओं का शिकार बनना नहीं चाहतीं, जो आत्मरक्षा के लिए लड़ती हैं या जो कानून के सामने उनका विरोध करने का साहस दिखाती हैं, उनको सबक सिखाने के लिए इसका इस्तेमाल किया जाने लगा है।

एसिड हमले आतंकवादी हमलों की ही तरह होते हैं, छिपकर मारो और भागो। हर आशंकित शिकार के लिए हर समय चौकन्ना रहना संभव नहीं होता। सबसे महत्वपूर्ण बात है कि आक्रमणकारी हमले के सबूत भी नहीं छोड़ता क्योंकि एसिड कहां से लिया, इसे प्रमाणित करना आसान नहीं है। एसिड हर नुक्कड़ पर, हर बाजार में आसानी से मिल जाता है। बेचने वाले को भी बिक्री का कोई हिसाब रखने की आवश्यकता नहीं होती। यह किसी स्वचालित हथियार से कम घातक नहीं है। नाक से इसका धुआं फेफड़ों में चला जाए तो घातक सिद्ध होता है। त्वचा भी अगर अधिक जल जाए तो संक्रमण तेजी से शरीर में फैलता है। अगर समय पर नियंत्रित न हो पाए तो गुर्दे जवाब दे देते हैं और रोगी की मौत हो जाती है। एसिड के घावों का इलाज बहुत खर्चीला है, जो लाखों में भी हो सकता है।

यह जानकर किसी भी भारतीय का सिर शर्म से झुक जाएगा कि दुनिया में भारत एसिड हमलों के लिए सबसे खतरनाक देशों में शामिल है। हमारे देश में एक साल में करीब एक हजार एसिड हमले होते हैं।

सलफ्यूरिक एसिड, नाइट्रिक एसिड और हाइड्रोक्लोरिक एसिड का इस्तेमाल छोटे कारीगर से लेकर बड़ी मशीनों के निर्माता और कारीगर, घरों की साफ-सफाई से लेकर सोने-चांदी का काम करने वाले तक करते हैं। इसे हासिल करना उतना ही आसान है, जितना आलू, चिप्स या बिस्कुट। दुर्भाग्य की बात है कि कुछ समय से यह एक दक्षिण एशियाई रोग बन गया है। भारत के अतिरिक्त पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बांग्लादेश आदि में इसका उपयोग औरतों के खिलाफ हथियार के रूप में होने लगा है। भारत उपमहाद्वीप से बाहर इसका उपयोग अधिकतर दक्षिण-पूर्व के कुछ देशों और अफ्रीका में होता है।

लेकिन सवाल उठता है कि सरकार इसमें आनाकानी क्यों कर रही है? जिस सरकार ने हाल में महिला शोषण पर अंकुश लगाने के लिए कानून पारित किए, जिनमें किसी लड़की का पीछा करना भी दंडनीय अपराध है, वही अदालत की ताकीद के बावजूद अनाकानी कर रही है। अपराध होने के बाद चुस्ती दिखाना और कानून पारित करना अपराध रोकने का केवल एक ही पक्ष है। उसका दूसरा और अधिक महत्वपूर्ण पक्ष है, उसके कारणों को नियंत्रित करना और अपराध होने की संभावनाएं कम करना।

विभिन्न याचिकाओं में यही कहा गया है कि एसिड बेचने पर पाबंदी तो नहीं लगाई जा सकती, लेकिन इसे बेचने का पूरा विवरण उपलब्ध कराना आवश्यक बना दिया जाए। अगर यह पता रहे कि एसिड कौन बेच सकता है, किसे बेच रहा है तो ग्राहक की पहचान आसान हो जाती है। साफ है सरकार पर उस वर्ग का दबाव है, जो नहीं चाहते कि एसिड की खरीद पर कोई नियम-कायदे लागू हों। इस आरोप की भी जांच होनी चाहिए कि क्या अनाकानी के पीछे ऐसे वर्गों का भी दबाव है, जो न केवल गैर-कानूनी ढंग से एसिड बेचते हैं, अपितु जो गैर कानूनी ढंग से एसिड बनाते भी हैं। यह चिंताजनक बात होगी, अगर सरकार इस हद तक काले बाजार के दबाव में आ जाए।

kauljawhalal@gmail.com

दैनिक भास्कर 11.07.2013

मौत से भी बदतर हर पल मरना

तेजाब हमला

कमलेश जैन

तेजाब बाजार में खुलेआम 30-40 रुपये में बिकने वाला सस्ता टॉयलेट क्लीनर है तो एक अत्यन्त ही ज्वलनशील हथियार भी। किसी की जिन्दगी को पल भर में जीते जी जलाकर रख देने वाला। चिकित्सकों के अनुसार कितना भी इलाज कर लिया जाए- पर शरीर अपनी पुरानी रंगत में नहीं लौटता। यह हमला पीड़ित को जिंदगी भर का दर्द और लाचारी दे जाता है- तभी तो बांग्लादेश, पाकिस्तान जैसे देशों तक ने इसकी खुलेआम बिक्री पर पाबंदी लगा दी है। इस अपराध की सजा ट्रायल टेररिस्ट एक्ट के तहत होती है- आजीवन कारावास। बांग्लादेश में जब से इसकी बिक्री पर रोक लगी है, यहां यह अपराध 60-70 फीसद कम हो गए हैं।

शुक्र है, सर्वोच्च न्यायालय के कड़े रुख के बाद हमारी सरकार ने कहा है कि अब एसिड जैसे ज्वलनशील रसायन को लाइसेंसधारी ही बेच पाएंगे तथा वही खरीदेंगे जो अपनी पहचान पत्र लेकर आएंगे और दुकानदार उनका ब्यौरा रखने के लिए बाध्य होगा। यदि इस काम को सही तरीके और ईमानदारी से अंजाम दिया गया तो एसिड पर खुलेआम रोक का असर शायद जल्द देखने को मिले। अगली तारीख को पीड़ितों के पुनर्वास तथा उनकी चिकित्सा पर विस्तार से दिशा-निर्देश दिये जाएंगे। जब केन्द्र तथा अन्य राज्य सरकारें अपनी-अपनी योजना बताते हुए एफिडेविट दाखिल करेंगी। इस आदेश को सुनकर पीड़िता सोनाली मुखर्जी की टिप्पणी थी कि यदि यही काम 10-15 साल पहले हो गया होता तो मैं और मेरी जैसी कई लड़कियां बच जातीं। सोनाली को सरकार से एक साल पहले वादा मिला था कि उसे सरकारी नौकरी मिलेगी जिसका उसे अब भी इंतजार है। लक्ष्मी ने भी बताया था कि वह नौकरी के लिए जहां गई, निराशा ही मिली। लोग चेहरा देखकर ही मुंह मोड़ लेते हैं।

अपने देश में आये दिन ये अपराध हो रहे हैं। कुछेक ही अखबार में छप जाते हैं और उससे ज्यादा प्रकाश में नहीं आते। कह सकते हैं कि यह अपराध बलात्कार से ज्यादा दर्दनाक तथा हत्या से ज्यादा दुःखदायी है। पर इस अपराध पर समाज की चुप्पी भयानक है। अपराधियों की आलोचना किसी मोहल्ले में नहीं होती। घर वाले-समाज वाले उनका साथ देते दिखते हैं। उनकी शादी आसानी से होती है और वे परिवार पालते-सामान्य जिन्दगी जीते देखे जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय में लक्ष्मी का मुकदमा 2006 से लंबित है। सभी राज्य सरकारें अपनी राय देते हुए एफिडेविट फाइल नहीं कर पाई हैं। कुछ ने कहा है कि इसकी बिक्री न रोकी जाए। यह एक आवश्यक वस्तु है जिसकी बिक्री आम होनी चाहिए पर वे नहीं सोचते कि इस तथाकथित वस्तु का दुरुपयोग अपराधी बम की तरह इस्तेमाल करते हैं। यदि तेजाब से जले 10-12 चेहरे एक साथ दिख जाएं तो रातों की नींद उड़ जाती है। भावुक इंसान इस बर्बरता पर रो देता है।

मेरे पास अन्नू मुखर्जी का मामला है। 24-25 वर्ष की उम्र में व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा में अपराधियों ने उस पर तेजाब उड़ेल दिया। 2004 में हुई इस घटना का फैसला 2011 में फास्ट ट्रैक कोर्ट पटियाला हाउस दिल्ली कोर्ट से आया। सजा हुई पांच वर्ष। अन्नू अनाथ है, अंधी है। चेहरा 30-40 फीसद सर्जरी की जरूरत बताता है पर घटना के सात साल बाद मुआवजा मिला- महज एक लाख 60 हजार। इलाज इतने दिनों इंतजार नहीं कर सकता पर करवाना भी मुश्किल है। खूबसूरत सोनाली मुखर्जी बीए में पढ़ने वाली मेधावी छात्रा थी। वह दैनिक जागरण प्रेस, धनबाद में काम करती थी। 25 और 36 वर्ष के संजय कुमार पासवान व तापस कुमार मिश्रा ने 23 अप्रैल 2003 को उस पर तेजाब डाल दिया। इस कारण उसकी आंखें, गला, सिर और अन्दरूनी अंग बुरी तरह प्रभावित हो गए। उसके कई ऑपरेशन हो चुके हैं और काफी होने बाकी हैं। सोनाली अपने पिता तथा छोटी बहन के साथ घर की छत पर सो रही थी कि अभियुक्तों ने गाली-गलौज करते हुए उस पर तेजाब उड़ेल दिया। गंभीर रूप से घायल सोनाली को अस्पताल में भरती कराया गया। इन दस सालों में तमाम तरह की सर्जरी के बाद उसमें मामूली अंतर आया है और इलाज का लंबा सफर बाकी है। अभियुक्तों को मात्र नौ वर्ष की सजा और 5000 रुपये रुपये जुर्माना हुआ।

> ● सर्वोच्च न्यायालय के कड़े रुख के बाद सरकार ने कहा है कि अब एसिड जैसे ज्वलनशील रसायन को लाइसेंसधारी ही बेच पाएंगे तथा वही खरीदेंगे जो अपना पहचान पत्र लेकर आएंगे और दुकानदार उनका ब्यौरा रखने के लिए बाध्य होगा। यदि इस काम को ईमानदारी से अंजाम दिया गया तो एसिड पर खुले आम रोक का असर शायद जल्द देखने को मिले
>
> ● तेजाबी हमले के ऐसे भी मामले हैं जहां अभियुक्तों को दो साल, एक साल और मात्र 15 दिन तक की सजा हुई है। पीड़ित के मुफ्त सरकारी इलाज, सरकारी अनुदान, मुआवजा, पुनर्वास आदिकी व्यवस्था इस देश में अब तक नहीं है

ऐसे अपराध के लिए 5000 रुपये जुर्माना जले पर नमक छिड़कने जैसा है। पिछले छह सालों से यह मामला उच्च न्यायालय में लंबित है। तेजाबी हमले के ऐसे भी मामले हैं जहां अभियुक्तों को दो साल, एक साल और मात्र 15 दिन तक की सजा हुई है। घटना के तुरंत बाद पीड़ित का मुफ्त बढ़िया सरकारी इलाज, सरकारी अनुदान, मुआवजा, पुनर्वास आदि की व्यवस्था इस देश में अब तक नहीं है। मामले देखे जाते हैं मात्र भारतीय दंड संहिता की धारा 326 के तहत। इनमें कानून, पुलिस और न्यायालय तक की सहानुभूति अभियुक्त के साथ दिखती रही है। अन्नू मुखर्जी के फैसले में कहा गया कि अभियुक्त युवा है, शादीशुदा है, तीन बच्चों का पिता तथा बूढ़े माता-पिता का एकमात्र सहारा है और यह उसका पहला अपराध है। अन्नू अपनी कहानी खुद बताती है। फैसला उस पर चुप है। लक्ष्मी का मामला भी सर्वोच्च न्यायालय में छह वर्षों से लंबित है।

इस अपराध के प्रति सभी का संवेदनशील होना जरूरी है। न्याय प्रक्रिया को अभियुक्त के प्रति सहानुभूति न रख पीड़ित के प्रति रखनी होगी जैसा आज सभी देशों में हो रहा है। वहां पीड़ित के लिए अलग फंड, मुआवजा, पुनर्वास की व्यवस्था की जाती है। यहां आज भी अभियुक्त को ही सहानुभूतिपूर्ण ढंग से देखने का रिवाज है। वर्मा कमेटी ने इस अपराध में कुछ बदलाव किये पर वे भी काफी नहीं। मुआवजे की राशि है मात्र दस लाख, जबकि एक-एक सर्जरी ही लाख की है और ऐसी 50-60 तक सर्जरी करवानी पड़ती हैं। यह अपराध 'हत्या के प्रयास' के तहत ही दर्ज होना चाहिए। इलाज के अभाव में ही चेन्नई की विनोधिनी मात्र तीन महीनों में मर गई। वह 23 वर्षीया बीटेक ग्रेजुएट थी। हाल में ही उसे नौकरी मिली थी- पिता गेटमैन हैं। उसे एक ऐसे व्यक्ति ने जलाया था जो उससे विवाह करना चाहता था पर मना करने पर उसने यह अपराध कर डाला।

तेजाब पीड़ित लड़कियां अक्सर गरीब हैं तो अभियुक्त भी ज्यादातर गरीब ही हैं- न तो वे पूरा खर्च दे सकते हैं और न ही लड़की वाले अपने खर्च से इलाज को अंजाम दे सकते हैं। क्यों नहीं मोटर व्हीकल एक्ट की तरह पीड़ित का इलाज पहले दिन से आखिर तक कोई और व्यवस्था न होने पर सरकार स्वयं करे। ऐसी लड़कियां यदि सक्षम हैं तो उन्हें नौकरी दी जाए और पुनर्वास सरकारी मदद से हो। भारत एक 'वेलफेयर स्टेट' है। यहां जनता के पैसे से करोड़ों, अरबों का इलेक्शन लड़ा जाता है फिर जनता के लिए, खासकर ऐसे पीड़ितों के लिए 10-20 करोड़ का फंड तो मुहैया करवाया ही जा सकता है।

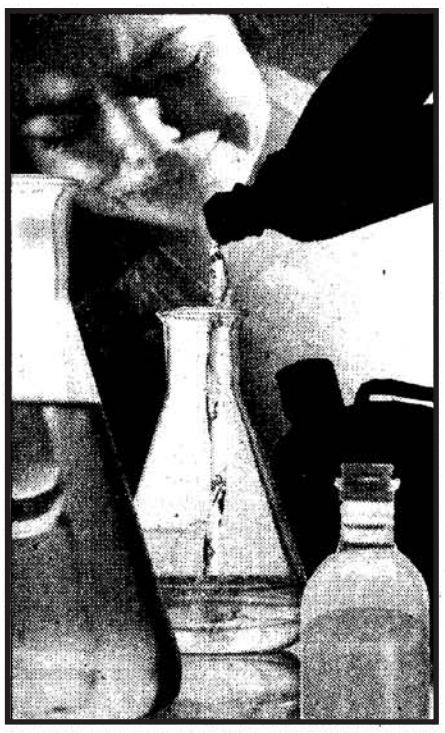

स्टॉप ऐसिड अटैक संस्था भी कुछ लड़कियों का मुकदमा फाइल करना चाहती है। इन्हें स्वावलंबी करना जरूरी है। सरकार इतना मुआवजा दे कि वे अपने घर में या किराये पर रह सकें, खाने-पीने के लिए उन्हें मुंहताज न होना पड़े। इन मामलों में तो अपने भी छोड़ देते हैं, जैसे मुजफ्फरपुर की रेजु के पिता ने अभियुक्त से समझौता कर घटना के दिन ही उससे नाता तोड़ दिया। चाचा उसे सहारा दे रहे हैं। ये सब सक्षम सुंदर और स्वावलंबी हो सकने वाली लड़कियां थीं- इन्हें किसी की जरूरत न थी। अब भी न हो- वे स्वस्थ हों। उनका पूरा इलाज हो ताकि अपने पैर पर खड़ी रहें जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

(लेखिका सुप्रीम कोर्ट में वरिष्ठ अधिवक्ता हैं)

राष्ट्रीय सहारा 20.07.2013

घरेलू कामगारों की सुरक्षा के लिए केंद्रीय कानून की मांग

जनसत्ता संवाददाता

नई दिल्ली, 31 जुलाई। घरेलू कामगारों के राष्ट्रीय प्लेटफार्म की ओर से एक व्यापक कानून बनाने की मांग पर श्रम मंत्रालय की स्थायी समिति को एक ज्ञापन दिया गया। ज्ञापन में कहा गया कि देश में करीब 9 करोड़ कामगार हैं। इनके लिए कोई भी कानून नहीं है।

ज्ञापन में कहा गया कि घरेलू कामगारों में से ज्यादातर पिछड़े क्षेत्रों से व असुरक्षित समुदायों से आते हैं। घरेलू कामगारों के रूप में उनकी ढेरों समस्याएं हैं। इनमें उचित मजदूरी का न होना, कार्य के लिए तय समय व उचित परिस्थितियों का न होना, कार्यस्थल पर हिंसा, गाली गलौज व यौन उत्पीड़न, दलालों व नियोक्ता एजंसियों के हाथों शोषण, मजबूरीवश अप्रवास, सामाजिक सुरक्षा, मानकों का अभाव, क्षमतावर्धक उपायों के न होने से यथास्थिति बने रहना शामिल है। ज्ञापन में कहा गया कि बहुत से कामगार नियोक्ताओं के घरों में 24 घंटें उपलब्ध मजदूरों के रूप में रह रहे हैं। इनमें से ज्यादातर अप्रवासी मजदूर हैं, जो दलालों से शोषित हैं। ये दलाल भारी राशि नियोक्ताओं से ले लेते हैं, पर इन्हें मजदूरी नहीं देते हैं। घरों में 24 घंटें रहने वाले कामगारों के अलावा जो घरेलू कामगार सिर्फ दिनभर के लिए मजदूरी करते हैं, उनका दिन भी 8 से 14 घंटें तक हो सकता है। उनमें से कुछ पांच घरों में काम करते हैं और हर घर में कुछ घंटें मजदूरी करते हैं। इनमें से ज्यादातर को थोड़े आराम का समय, सवेतन अवकाश या अन्य सुविधाएं नहीं मिलती हैं।

जंतर मंतर पर बुधवार को प्रदर्शन करते घरेलू कामगार मोर्चा के कार्यकर्ता।

ज्ञापन में कहा गया कि घरेलू कामगारों की विशेष कार्य परिस्थितियों व उनकी विशाल संख्या के कारण एक अलग केंद्रीय कानून की सख्त आवश्यकता है जो उनके अधिकारों को सुरक्षा दे सके। यह कानून घरेलू कामगारों के रोजगार और कार्य परिस्थितियों का नियमन करने व उन्हें सामाजिक सुरक्षा देने में एक साथ सक्षम हो। इसमें मजदूरी व कार्य की अन्य स्थितियों का निर्धारण शामिल है। विवादों का निपटारा, रोजगार की सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा जैसे शिशु देखभाल सुविधा, आवास, प्रशिक्षण व दक्षता निर्माण इस कानून के अंग हों। ज्ञापन में मांग की गई कि एक त्रिपक्षीय बोर्ड का गठन किया जाए जो कामगारों का पंजीकरण व उनके सामाजिक सुरक्षा अनुदान का नियमन का काम देखे।

जनसत्ता 01.08.2013

घरेलू महिला का काम जीडीपी में शामिल करने का रास्ता साफ

अजय तिवारी/एसएनबी

नई दिल्ली। परिवार की महिला सदस्य घर पर जो रोजमर्रा का काम करती हैं, उसे भी देश की उत्पादकता (जीडीपी) में शामिल करने पर सरकार के भीतर सहमति बन गई है। इसका मतलब यह हुआ कि मां, बहन और पत्नी के घरेलू श्रम की भी सरकारी स्तर पर पहचान जाएगी।

- महिला और बाल विकास मंत्रालय पिछले साल से इसके लिए लगा था
- सांख्यिकीय और कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय करेगा घरेलू श्रम का सर्वे

महिला और बाल विकास मंत्रालय इसके लिए पिछले साल नवम्बर से प्रयासरत था। वह लगातार सांख्यिकीय और कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय को कह रहा था कि महिलाओं के घरेलू श्रम का मूल्यांकन किया जाए और इसके लिए बाकायदा सर्वे कराया जाए। बताया जा रहा है कि सांख्यिकीय और कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय जिला स्तर पर घरेलू श्रम को लेकर सर्वे कराने के लिए तैयार हो गया है। महिला और बाल विकास मंत्री कृष्णा तीरथ कहती हैं कि वह पैसा लिए बिना घर का काम करने वाली परिवार की महिला सदस्य के श्रम का सम्मान करना चाहती है। उन्होंने कहा कि इसका देश की उत्पादकता में भी योगदान है जिसे नजरंदाज किया जा रहा है। इसलिए जरूरी है कि इसे सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के साथ लिंक किया जाए।

अतिगरीब महिला (बीपीएल) : 8.2 करोड़

गांव में :	6.4 करोड़
शहर में :	1.8 करोड़
विभिन्न क्षेत्रों में महिला श्रमिक	
क्षेत्र	**संख्या (मिलियन में)**
कृषि	10.7
रिटेल	4.4
शिक्षा	4.03
तंबाकू उत्पाद	3.5
घर पर काम करने वाली श्रमिक	**3.9**
निर्माण उद्योग	2.68
लकड़ी उद्योग	1.51
अन्य	13.65

महिला और बाल विकास मंत्रालय तो यह भी कह रहा है कि सरकार अपनी योजनाएं बनाते समय घरेलू श्रम से संबंधित डॉटा का इस्तेमाल भी करे। डॉटा बनाने के लिए जो सर्वे होने वाला है, उसमें भी महिला और बाल विकास मंत्रालय अपनी राय रखना चाहता है। इसको लेकर महिला और बाल विकास मंत्री ने सांख्यिकीय और कार्यक्रम क्रियान्वयन राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार) श्रीकांत जैना को पत्र भी लिखा है। महिलाओं के घरेलू श्रम पर काफी काम भी हुआ है। महिला और बाल विकास मंत्रालय ने पहले इस पर एक विशेषज्ञ समूह बनाया (जिसमें सांख्यिकीय और कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय के अधिकारी भी शामिल हुए थे और बाद में एक टॉस्क फोर्स का गठन भी किया। इस टॉस्क फोर्स में आर्थिक विषयों के जानकार प्रो. एसआर हाशिम, प्रो. इंदिरा हिरवे और प्रो. जयंती घोष सरीखे प्रतिष्ठित व्यक्तियों को रखा गया।

टॉस्क फोर्स की बड़ी सिफारिश यह थी कि महिलाओं के घरेलू श्रम को लेकर सांख्यिकीय और कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय और महिला-बाल विकास मंत्रालय के बीच उपयुक्त तालमेल होना चाहिए। इसमें यह भी कहा गया है कि घरेलू श्रम में काम के घंटों का ठीक से सर्वे होना चाहिए। सरकार के पास महिलाओं के श्रम की कुछ जानकारी है तो वह सिर्फ यही है कि खेतिहर मजदूरों में महिलाओं का प्रतिशत 32.9 है और निर्माण उद्योग उनमें जो कामगार हैं, उनमें आधी महिलाएं हैं। हालांकि सरकार के पास यह भी जानकारी है कि महिलाओं को पुरुषों की तुलना में 35 प्रतिशत तक श्रम का मूल्य कम मिलता है।

राष्ट्रीय सहारा 03.08.2013

अमेरिका में 1960 के दशक में घरेलू कामवालियों को ठीकठाक मेहनताना और साप्ताहिक अवकाश मिलता था

हमारे घरों में मौजूद असमानता का भारत

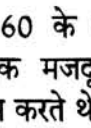

हर्ष मंदर
डायरेक्टर, सेंटर फॉर इक्विटी स्टडीज
manderharsh@gmail.com

हमारे शहरी मध्यवर्गीय घरों में एक असमानता का शिकार भारत मौजूद है। यही पर परिवार वे बच्चे असमानता का सबक सीखते हैं। घरों में काम करने वाले एकमात्र ऐसे वयस्क हैं जिन पर वे हुकुम चला सकते हैं और उन्हें नाम लेकर पुकार सकते हैं।

एक असाधारण उपन्यास 'हेल्प' ने मेरा दिल छू लिया है। इसे कैथरीन स्टाकेट ने लिखा है और यह 1962 के अमेरिकी राज्य मिसिसीपी के एक छोटे शहर में घरों में काम करने वाली महिला के बारे में है। नस्लीय भेदभाव और अलगाव खत्म करने के लिए अमेरिका को हिला देने वाले आंदोलन ने तब तक दक्षिण की इस छोटी सी बस्ती में असमान सामाजिक रिश्तों को नहीं बदला था। स्टाकेट ने उस सारे अलगाव, अविश्वास और अपमान को जीवित किया है, जिससे वह अश्वेत महिला उस मध्यवर्गीय श्वेत परिवार में काम करते हुए गुजरी। उपन्यास में तीन महिलाएं गुमनाम रहकर इन घरों के अनुभव लिखकर एक विद्रोह का नेतृत्व करती हैं।

मुझे जिस बात ने सबसे ज्यादा विचलित किया वह यह थी कि आधी सदी पहले अमेरिका के दक्षिणी राज्य में घरों में काम करने वाली महिलाओं ने जो अपमान और शोषण भुगता वह कई तरह से उस अनुभव से कम दमनकारी है जो करीब 30 लाख ऐसी महिलाएं भारत के शहरी घरों में काम करते हुए 21वीं सदी के दूसरे दशक में भुगत रही हैं। दुख की बात है कि इसके खिलाफ कोई आवाज ही नहीं उठती।

भारतीय मध्यवर्गीय घरों की दीवारों के पीछे असमानता में जी रहा भारत रोज खुद को दोहराता है। यहीं पर संपन्न घरों के बच्चे असमानता को स्वीकार कर इसे सामान्य घटना मानना सीखते हैं। घरेलू कामगार एकमात्र ऐसे वयस्क होते हैं जिन पर वे हुकुम चला सकते हैं, उन्हें उनके नाम से पुकार सकते हैं और बेहिचक कठोर शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं। जब एक बच्चे को घर में बड़ों के पैर छूने को कहा जाता है तो उसे कैसे पता रहता है कि उसे घर में काम के लिए रखे वयस्कों को छोड़कर सभी बड़ों के पैर छूने हैं?

अमेरिकी उपन्यास में एक अश्वेत घरेलू कामवाली अपने रोजगार जीवन में 17 श्वेत बच्चों को पालपोसकर बड़ा करती है। इसकी वजह से वह अपने बच्चे को जरूरी वक्त नहीं दे पाती। श्वेत परिवारों के बच्चे उसे अपनी मां से भी ज्यादा चाहते हैं। लेकिन तब उसका दिल टूट जाता है जब बड़े होकर यही बच्चे उसके प्रति अपनी मां के जैसा रवैया अपना लेते हैं और अपमानजनक व्यवहार करने लगते हैं। हम में से कितने लोगों को ऐसी महिलाओं ने खुद के बच्चों को अनदेखा कर बड़ा किया है, लेकिन जब हम बड़े होते हैं और वे बूढ़े तो हम उन्हें भुला देते हैं।

'द हेल्प' में 'लेखन से विद्रोह' रोजगारदाताओं द्वारा घरेलू कामगारों के लिए अलग टॉयलेट बनाने के फैसले के कारण जन्मा। उन कामगारों को यह फैसला अपना अपमान लगा। पर मध्यवर्गीय भारतीय घरों में यह आम बात है। 'जागोरी' के एक सर्वेक्षण में पता चला था कि दिल्ली के उपनगरों के 30 फीसदी घरों में टॉयलेट तक कामवालियों की पहुंच ही नहीं है और जिन घरों में पहुंच है उनमें से 40 फीसदी घरों में अलग व्यवस्था है। 'द हेल्प' की कामवालियां डाइनिंग टेबल पर ही खाना खाती थीं पर मालिकों से अलग समय पर। भारतीय घरों में तो कामवालियों के लिए तश्तरियां भी अलग होती हैं और घर के लोगों के साथ खाने का तो सवाल ही नहीं। एकाध उदाहरण हो तो अलग बात है। वे आमतौर पर किचन में फर्श पर बैठकर भोजन करती हैं। उन्हें वह भोजन नहीं दिया जाता जो घर के लोग करते हैं बल्कि मोटे अनाज से बना अलग भोजन दिया जाता है।

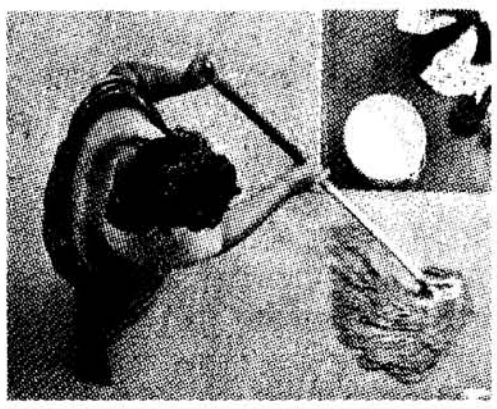

मिसीसिपी में 1960 के दशक में घरेलू कामगारों को ठीकठाक मजदूरी मिलती थी, प्रतिदिन आठ घंटे काम करते थे और साप्ताहिक अवकाश भी मिलता था। हमारे यहां तो घरों में रहने वाले कामगार सातों दिन जब तक वे जागते रहते हैं, काम ही करते रहते हैं। पार्टटाइम काम करने वालों को इतना कम पैसा दिया जाता है कि उन्हें कई घरों में काम करना पड़ता है। कभी कभार छुट्टी मिल गई तो ठीक वरना नहीं आए तो पैसे कट जाते हैं। उन्हें कायदे के मुताबिक न्यूनतम मजदूरी से बहुत कम पैसा दिया जाता है। उन्हें श्रम कानूनों का संरक्षण नहीं है और न कोई सामाजिक सुरक्षा। और तो और घर में उनके हाथ से नुकसान हो जाए तो पैसे काट लिए जाते हैं। कुछ कामवालियों का तो कहना है कि हिसाब में धोखाधड़ी कर उन्हें भुगतान भी कम दिया जाता है। चोरी का आरोप लगना तो आम है। बूढ़े होने पर भगवान भरोसे छोड़ दिया जाता है।

बड़ी संख्या में पढ़ी-लिखी महिलाएं नौकरी के लिए आगे आई हैं। इससे शहरी परिवार इन कामवालों पर, जिनमें पुरुष व महिलाएं दोनों शामिल हैं, और भी निर्भर हो गए हैं। सुजाता घोटेकर ने हाल ही में एक लेख में लिखा है कि अर्थव्यवस्था में इन कामवालियों के योगदान को कम करके आंका जाता है। बढ़ती मांग से सौदेबाजी करने की उनकी क्षमता में थोड़ा इजाफा जरूर हुआ है पर संगठित न होने के कारण उन्हें इसका ज्यादा फायदा नहीं मिल पाता।

मध्यवर्गीय भारत का सबसे शर्मनाक पहलू है घरों में बच्चों का काम करना। कर्नाटक में हुए अध्ययन में 30 फीसदी घरेलू कामगार बच्चे ही पाए गए। मंगलूर में तो यह प्रतिशत 45 तक पाया गया। इनके ग्रामीण माता-पिता खेती में हमेशा बने रहने वाले संकट का सामना करते रहते हैं। मजबूर होकर वे अपने बच्चे शहरों में काम के लिए ले जाने वाले एजेंटों को सौंप देते हैं। झारखंड जैसे राज्यों के आदिवासी इलाकों में यह समस्या ज्यादा है। बच्चों को तरजीह दी जाती है क्योंकि वे चुपचाप सब मंजूर कर लेते हैं और शिकायत भी नहीं करते। घर के लोग खुद के बच्चों को तो पढ़ने और खेलने भेजने का विचार करते हैं जबकि उन्हीं के उम्र के इन बच्चों से कोल्हू के बैल की तरह काम कराते हैं। मेरे सहयोगियों ने सड़कों पर घूमने वाले बच्चों को आश्रय देने के लिए दिल्ली में चाइल्ड वेलफेयर कमेटी शुरू की है। वे प्रायः दिल्ली के घरों में दुर्व्यवहार के शिकार बाल कामगारों को बचाकर अपने यहां शरण देते हैं। मैं जब उनसे चर्चा करता हूं तो उपेक्षा, गुलामों की तरह व्यवहार करने और हिंसा के भयानक किस्से सुनने को मिलते हैं। असमानता का यह भारत तब बदलना शुरू होगा जब हम अपने बच्चों को यह सिखाएंगे कि घरों में काम करने वाले ये लोग भी हमारे जैसे ही इनसान हैं और वैसी ही गरिमा व सम्मान के हकदार हैं।

दैनिक भास्कर 19.07.2013

समयबद्ध सेवाओं का जनता भरपूर लाभ उठाए : दीक्षित

जागरूकता शिविर का आयोजन, 910 आरडब्लूए के 4000 पदाधिकारी कार्यशाला में शामिल

जनसत्ता संवाददाता

नई दिल्ली, 7 जुलाई। दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित ने लोगों से आग्रह किया कि वे समयबद्ध सेवाएं प्रदान करने की व्यवस्था का लाभ उठाएं। इसके तहत 24 विभागों की 116 सेवाएं शामिल की गई हैं जिन्हें बिना देरी और बाधा के निर्धारित समय में प्रदान किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि दिल्ली पहला राज्य था जिसने इससे संबंधित कानून बनाया। मुख्यमंत्री ने इस व्यवस्था को दोधारी तलवार बताया जिसके तहत देरी करने के जिम्मेदार सुस्त अधिकारियों को दंडित किया जा सकता है और समय पर सेवा न प्रदान किए जाने से पीड़ित आवेदकों को देरी के दिनों के लिए राहत दी जाती है। ऐसे आवेदकों को प्रतिदिन की देरी पर 10 रुपए के हिसाब से देरी का कुल मुआवजा दिया जाता है जिसका भुगतान उसी समय उस राशि से किया जाता है जो दोषी कर्मचारियों से प्राप्त जुर्माने से एकत्रित की गई है।

इसके अलावा ई-एसएलए से सरकारी विभागों में कार्य संस्कृति में काफी सुधार आया है और सरकारी कर्मचारियों को समयबद्ध सेवाएं प्रदान करने का महत्व भी पता चला है। मुख्यमंत्री ने यह भी बताया कि समयबद्ध सेवा प्रदान करने के लिए 55 लाख आवेदन मिले थे जिसमें 51 लाख को समय पर सुविधाएं दी गई और वे पूरी तरह संतुष्ट हैं। जहां तक राजस्व विभाग का सवाल है 2010 में 47 फीसद आवेदन लंबित रहा करते थे जबकि 2012 में 5 फीसद रह गए। इसका श्रेय ई-एसएलए व्यवस्था को जाता है।

दीक्षित ने तालकटोरा स्टेडियम में आरडब्लूए के लिए समयबद्ध सेवाओं के प्रति जागरूकता के दूसरे शिविर को संबोधित करते हुए यह कहा। तीन जिलों-उत्तर, उत्तर-पश्चिम और पश्चिमी जिले से 910 आरडब्लूए के करीब 4000 पदाधिकारी कार्यशाला में शामिल हुए। इस अवसर पर दिल्ली के परिवहन मंत्री रमाकांत गोस्वामी, विधायक देवेंद्र यादव, माला राम गंगवाल, राजेश लिलोठिया, प्रधान सचिव आइटी और अतिरिक्त सचिव भागीदारी भी मौजूद थे।

ई-एसएलए व्यवस्था की महत्ता

- कानून बनाने वाला दिल्ली पहला राज्य
- 24 विभागों की 116 सेवाएं शामिल
- देरी पर मुआवजा का हक
- दोषी कर्मचारियों से जुर्माने की वसूली

प्रधान सचिव आइटी ने समयबद्ध सेवा प्रदान करने की अवधारणा और इसके अमल की जानकारी दी जबकि उपायुक्त उत्तर ने मेरी दिल्ली मैं ही संवारू निधि की स्थिति की जानकारी दी।

दीक्षित ने विभिन्न आरडब्लूए के पदाधिकारियों की ओर से उठाए गए मुद्दों का जिक्र करते हुए कहा कि कोई भी आरडब्लूए अपने इलाके में मेरी दिल्ली मैं ही संवारू निधि से सीसीटीवी लगा सकती है बशर्ते दिल्ली पुलिस को इस बारे में विश्वास में लें। मुख्यमंत्री ने कहा कि सुरक्षा के पहलू को देखते हुए सीसीटीवी का महत्व और उपयोगिता बढ़ती जा रही है। मुख्यमंत्री ने कहा कि आरडब्लूए और दिल्ली पुलिस को कारगर तालमेल बरतना होगा। उन्होंने यह भी कहा कि 16 दिसंबर,2012 की दुखद घटना के बाद दिल्ली सरकार ने मुसीबत में घिरी महिलाओं के लिए 24 घंटे की 181 हेल्पलाइन बनाई। उन्होंने

तालकटोरा स्टेडियम में रविवार को समयबद्ध सेवाओं के प्रति जागरूकता शिविर में भाग लेतीं मुख्यमंत्री शीला दीक्षित।

अपने सरकार की भागीदारी पहल का भी जिक्र किया। भागीदारी निर्वाचित सरकार और जनता के बीच निरंतर संपर्क और विचार-विमर्श का प्रभावी मंच बन गई है। चुनाव प्रक्रिया संपन्न होने पर जनता और निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच संपर्क समाप्त नहीं होनी चाहिए अपितु जनता और निर्वाचित सरकार के बीच नए सिरे में शुरू होना चाहिए और सघन होना चाहिए।

मुख्यमंत्री ने कहा कि दिल्ली पहला ऐसा राज्य है जहां जनता की इच्छा और प्राथमिकता के अनुसार स्थानीय विकास के कार्यक्रम संपन्न किए जाते हैं। जनता को सतर्क रहना होगा ताकि वे ऐसी परियोजनाओं पर नजर रख सकें। सरकार मेरी दिल्ली मैं ही संवारू निधि के तहत प्रत्येक जिले को प्रतिवर्ष 5 करोड़ प्रदान करती है। इसके अलावा प्रत्येक आरडब्लूए को हर वर्ष तत्काल विकास कार्यों के लिए 1 लाख रुपए दिए जाते है।

दीक्षित ने अपनी सरकार की कल्याण योजनाओं की संक्षिप्त चर्चा करते हुए लोगों से पौधें लगाने और उनकी परिवार के सदस्यों की तरह देखभाल करने का आग्रह किया। दिल्ली को बेहतर पर्यावरण की जरूरत है ताकि कोई भी आसानी से सांस ले सकें। वृक्ष हमें आक्सीजन प्रदान करते हैं जो हमारे जीवन के लिए जरूरी है। मुख्यमंत्री ने लगाए पौधों की देखभाल मुस्कान के साथ करने से संबंधित एक पोस्टर जारी किया जिसें पूर्व पार्षद संजय पुरी ने प्रकाशित किया। विभिन्न सरकारी विभागों और एजंसियों ने विभिन्न कल्याण योजनाओं और सरकार की उपलब्धियों को उजागर करने के लिए स्टॉल लगाए गए।

दीक्षित ने आरडब्लूए के प्रतिनिधियों से आग्रह किया कि वे अपनी समस्याओं और सुझाव रखें। बड़ी संख्या में प्रतिनिधियों ने विचार रखें। प्रतिनिधियों की ओर से व्यक्त की गई दिक्कतों में यातायात पुलिस की ढिलाई, सफाई और स्वच्छता की खामियों, पार्कों के रखरखाव, फुटपाथ पर कब्जों और बहुनिकाय व्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं का जिक्र किया गया। दीक्षित ने उपायुक्तों और आरडब्लूए के बीच मासिक बैठकें नियमित तौर पर किए जाने की जरूरत पर फिर बल दिया और कहा कि इसका सही तरीके से पालन किया जाना चाहिए।

उन्होंने कहा कि दिल्ली सरकार भागीदारी कार्यशालाओं और ई-एसएलए जैसी कार्यशालाओं में निरंतर आरडब्लूए के साथ विचार-विमर्श करती है क्योंकि विभिन्न इलाकों की समस्याएं अलग-अलग प्रकार की होती है और अलग-अलग स्तर पर इनका समाधान निकाला जाता है। मुख्यमंत्री ने प्रतिनिधियों की राय को गंभीरता से सुना और आश्वासन दिया कि उनकी ओर से उठाए गए मुद्दों पर एक पखवाड़े के भीतर कार्रवाई की जाएगी।

जनसत्ता 08.07.2013

सरकार को आई रेहड़ी-पटरी वालों की सुधि

मुद्दा

जाहिद खान

हमारे संविधान का अनुच्छेद 21, देश के प्रत्येक नागरिक को आजीविका का अधिकार प्रदान करता है। लेकिन इस स्पष्ट संवैधानिक प्रावधान के बावजूद लाखों लोग इस बुनियादी अधिकार से वंचित हैं। ऐसे ही लोगों के अधिकारों के संरक्षण के लिए अब सरकार खुद आगे आई है। देश के तकरीबन एक करोड़ से अधिक रेहड़ी-पटरी वालों यानी स्ट्रीट वेंडरों की आजीविका और सामाजिक सुरक्षा से जुड़े एक महत्वपूर्ण विधेयक 'रेहड़ी फेरी आजीविका संरक्षण व फेरी व्यवसाय नियमन विधेयक' को हाल ही में लोकसभा ने अपनी मंजूरी दे दी। रेहड़ी पटरी वालों के व्यापक हित और उनके मानवाधिकारों की रक्षा के लिए बना यह केंद्रीय कानून निसंदेह स्वागतयोग्य है।

इस विधेयक के अमल में आने के बाद ज्यादातर रेहड़ी-पटरी वाले इसके दायरे में आ जाएंगे। कानून बनने के बाद देश के सभी शहरों में रेहड़ी-फेरी वालों के बीच जहां संगठनीकरण की प्रक्रिया तेज होगी, वहीं कानून के अमल के लिए नगर निकायों को भी चुस्त-दुरुस्त बनना पड़ेगा। सरकार अब इन रेहड़ी-पटरी वालों को वेंडिंग के लिए सर्वे के आधार पर सर्टिफिकेट देगी। सर्टिफिकेट देने के लिए बाकायदा एक प्रक्रिया अपनाई जाएगी। जिसमें पांच साल में होने वाले सर्वे और क्षेत्र की आबादी के अनुपात में 2.5 फीसद रेहड़ी-पटरी वालों को सर्टिफिकेट दिए जाएंगे। सर्टिफिकेट देने की प्रक्रिया पूरी तरह से पारदर्शी हो, इसके लिए विधेयक में खास तौर पर ध्यान रखा गया है। विधेयक के अमल में आने के बाद हर शहर में टाउन एवं जोनल वेंडिंग कमेटी का गठन अनिवार्य होगा। इस तरह की समितियों में सदस्यों के बतौर चालीस फीसद वेंडर संगठनों के निर्वाचित प्रतिनिधि, दस फीसद गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि और बाकी पचास फीसद में शहर के योजनाकार, प्रशासक व पुलिस प्रतिनिधियों समेत निर्वाचित जनप्रतिनिधि शामिल होंगे। विधेयक के तहत टाउन वेंडिंग कमेटी को काफी सशक्त किया गया है और बिक्री क्षेत्रों (वेंडिंग जोन) का निर्धारण करने से जुड़े लगभग सभी मुद्दों पर अंतिम फैसले के लिए उसे शक्ति प्रदान की गई है। एक मजबूत शिकायत निवारण तंत्र का प्रावधान भी विधेयक में है।

अपनी आजीविका की सुरक्षा के लिए वर्षों से एक बेहतर कानून की मांग कर रहे रेहड़ी-पटरी वालों का समर्थन सुप्रीम कोर्ट भी कर चुका है। साल 2010 में अपने एक फैसले में अदालत ने एक महत्वपूर्ण व्यवस्था देते हुए कहा था कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 (1) जी के तहत वेंडरों को अपने व्यवसाय संचालन का मौलिक अधिकार है और कानून के जरिए इस अधिकार की रक्षा की जानी चाहिए। बहरहाल इस फैसले के तीन साल बाद ही सही, सरकार कानून लेकर आ गई है। प्रस्तावित विधेयक

में ऐसे कई प्रावधान शामिल किए गए हैं, जिनसे प्रशासनिक मनमानी को रोका जा सके। सरकार ने विधेयक में वे तमाम बातें शामिल करने की कोशिश की है, जिसकी लंबे समय से मांग होती रही है। विधेयक में एक प्रमुख प्रावधान यह है कि किसी हादसे में रेहड़ी-पटरी वाले की मौत या दुर्घटना के बाद सर्टिफिकेटधारी की पत्नी या बच्चे को काम करने का हक हासिल होगा। यानी सर्टिफिकेटधारी की मौत के बाद भी उसके परिवार के हितों का संरक्षण रहेगा।

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली समेत देश के सभी महानगरों में फिलवक्त लाखों रेहड़ी-पटरी वाले सड़क और फुटपाथ किनारे छोटी-मोटी वस्तुएं बेचकर अपनी आजीविका चलाते हैं। जिसमें बहुत कम लोगों के पास ही लाइसेंस है। दिल्ली की ही यदि बात करें, तो यहां 55 हजार रेहड़ी-पटरी वालों के पास लाइसेंस है। वहीं मुंबई में फिलवक्त 18 हजार लाइसेंस प्राप्त वेंडर हैं। विधेयक के अमल में आने के बाद राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में करीब चार लाख वेंडर और महानगर मुंबई में चार लाख साठ हजार वेंडर एक साथ लाभान्वित होंगे। ठीक इसी तरह से दीगर शहरों के वेंडरों को भी फायदा होगा। यानी पूरे देश में रेहड़ी-पटरी वालों की एक बड़ी तादाद को वेंडिंग के लिए कानूनी संरक्षण मिल जाएगा। रोजगार के लिहाज से अहम इस विधेयक से सबसे ज्यादा फायदा उन लोगों को होगा, जिनके पास अपना कोई बंधा-बंधाया रोजगार और अपनी कोई दुकान नहीं है।

रेहड़ी-पटरी वालों की मुख्य शिकायत है कि इन्हे आए दिन कोई भी अपना निशाना बना लेता है। ये लोग खास तौर पुलिस और ट्रैफिक पुलिसकर्मियों के आसान शिकार होते हैं। कानून की आड़ में पुलिस वाले इन रेहड़ी-पटरी वालों से अवैध वसूली करते हैं। 'सुविधा शुल्क' देने के बाद भी कोई गारंटी नहीं होती कि वे अपना काम सही ढंग से कर पाएंगे। पुलिस और ट्रैफिक पुलिसकर्मियों से अगर बच जाएं, तो नगर निगम और महानगर पालिकाओं के कर्मचारियों की गिद्ध नजर इन पर रहती है। रेहड़ी-पटरी वालों को हर वक्त यह डर सताता रहता है कि कब कौन उन्हें अपने निशाने पर ले ले। नए विधेयक की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सभी राज्य और नगर निगम कानूनों के साथ ही पुलिस अधिनियमों पर अपने अधिभावी प्रभाव से लैस है। विधेयक कहता है कि इस अधिनियम के प्रावधान अधिनियम के अलावा उस समय प्रभावी अन्य किसी भी कानून या किसी अन्य कानून के आधार पर प्रभावी किसी भी उपकरण में निहित असंगति के बावजूद प्रभावी होंगे।

कानून के अमल में आने के बाद निश्चित तौर पर रेहड़ी-पटरीवालों की सामाजिक सुरक्षा और आजीविका से जुड़ा एक अहम मसला हल हो जाएगा। रेहड़ी-पटरीवाले वे कामगार हैं, जो विकास की दौड़ में सबसे पीछे रह गए हैं। विधेयक के अमल में आने के बाद न सिर्फ इनकी कारोबारी मुश्किलें कम होंगी, बल्कि पुलिस, ट्रैफिक पुलिसवालों और नगरीय प्रशासनिक अधिकारी-कर्मचारियों के उत्पीड़न और शोषण से भी मुक्ति मिलेगी। किसी भी लोकतांत्रिक देश की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वहां हाशिए पर रहने वालों के अधिकारों का कितना संरक्षण है, इस लिहाज से सरकार का हालिया कदम प्रशंसनीय है।

राष्ट्रीय सहारा 13.09.2013

घरेलू हिंसा के खिलाफ आवाज बुलंद करेंगे अहिंसा मैसेंजर

अमर उजाला ब्यूरो

- महिलाओं पर हिंसा के मामलों पर अंकुश लगाने को केंद्र ने तैयार की नई योजना
- यूपीए अध्यक्ष सोनिया गांधी शनिवार को इस योजना को दिखाएंगी हरी झंडी

नई दिल्ली। महिलाओं के खिलाफ हिंसा के बढ़ते मामलों को देखते हुए सरकार ने नए अभियान के तहत इन पर अंकुश लगाने का निर्णय लिया है। हिंसा के मामलों को कम करने के लिए अब अहिंसा मैसेंजर समाज में महिलाओं के सम्मान और सुरक्षा के लिए लोगों को प्रेरित करेंगे। यही नहीं अहिंसा मैसेंजर महिलाओं के कानूनी हक और इसे पाने का तरीका भी बताएंगे।

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के इस कार्यक्रम को यूपीए अध्यक्ष सोनिया गांधी शनिवार को हरी झंडी दिखाएंगी। मंत्रालय के सूत्रों के मुताबिक इस अभियान में गांवों की महिलाओं और पुरुषों खासतौर पर युवाओं को शामिल किया जाएगा। जबकि कई प्रशिक्षित आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को भी इस कार्यक्रम से जोड़ा जाएगा। ताकि समाज में महिलाओं और बच्चों के खिलाफ हिंसा के तमाम तरीकों को खत्म करने में मदद मिल सके। अहिंसा मैसेंजर अपने इलाके में महिलाओं को हिंसामुक्त करने के लिए हरसंभव प्रयास करेंगे। अगर किसी घर में महिलाओं पर अत्याचार हो रहा है तो इन अहिंसा मैसेंजरों के जरिए पीड़ित अपनी शिकायत को आगे तक पहुंचा सकती है। इसके अलावा अगर कोई परिवार या व्यक्ति इनके समझाने के बावजूद महिलाओं पर अत्याचार करना नहीं छोड़ता है तो उनका नाम सार्वजनिक भी किया जाएगा। ताकि भविष्य में ऐसी घटनाएं दोहराने की जहमत नहीं उठा सके।

अमर उजाला 30.08.2013

अब एक लाख तक की आय वालों को अन्नश्री

- सरकार ने अन्नश्री योजना का दायरा बढ़ाया
- पिछले तीन वर्ष से दिल्ली में रह रहे लोग होंगे पात्र
- सस्ता राशन लेने वालों को नहीं मिलेगा फायदा

देखी सुनी – मुख्य हिंदी समाचार पत्रों में छपने वाले महिला मुद्दों से सम्बन्धित खबरो व लेखो का त्रैमासिक संकलन है। संकलित लेखों में व्यस्त विचार लेखकों के निजी विचार है, ज़रुरी नही यह हमारी संस्थागत सोच व क्रियांवयन को दर्शाते हो।

जागोरी JAGORI

निशुल्क प्रतियों के लिए संपर्क करें–
जागोरी, बी–114, शिवालीक, मालवीय नगर, नई दिल्ली–110017,
फ़ोनः 011–26691219, 26691220
email: resource@jagori.org/jagori@jagori.org,www.jagori.org

Bread for the World, Misereor के सहयोग से प्रकाशित